नूपुर - 2014

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के
121वें जन्मोत्सव पर
स्मारिका-रूप में कतिपय 'नूपुर'

श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट
(श्री म ट्रस्ट)

कार्यालय : 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन 0172-2724460

मन्दिर : श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ (श्री पीठ)
सैक्टर 19-डी, चण्डीगढ़ 160019

website : http://www.kathamrita.org
email : srimatrust@yahoo.com

आवरण चित्र :

''वेदमत में इन सब चक्रों (षड्चक्रों) को— 'भूमि' कहते हैं। सप्तभूमि। हृदय— चतुर्थ भूमि है। अनाहत पद्म, द्वादश दल है।

''विशुद्ध चक्र है पञ्चम भूमि। यहाँ पर मन के चढ़ जाने पर केवल ईश्वर-कथा कहने और सुनने के लिए प्राण व्याकुल होता है। इस चक्र का स्थान है कण्ठ। षोडश दल पद्म। जिसका इस चक्र में मन आ गया है, उसके सामने विषय की बातें, कामिनी-काञ्चन की बातें होने पर उसे बड़ा कष्ट होता है। उस प्रकार की बातें सुनने पर वह वहाँ से उठकर चला जाता है।

''उसके बाद है षष्ठभूमि। आज्ञा चक्र— दो दल पद्म। यहाँ पर कुल कुण्डलिनी के आ जाने पर ईश्वर का रूपदर्शन होता है।

....

''तब फिर सप्तम भूमि। सहस्रार पद्म। वहाँ पर कुण्डलिनी के चले जाने पर समाधि हो जाती है।''

....

''सहस्रार में मन के आ जाने पर समाधिस्थ हो जाता है।

—कथामृत-4, 2010, पृ० 186

© श्री म ट्रस्ट

सम्पादन	:	डॉक्टर (श्रीमती) निर्मल मित्तल सहयोग— ईश्वर चन्द्र, डॉ० नौबतराम भारद्वाज
प्रकाशन	:	प्रेसीडेंट श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018 फोन - 0172-2724460
मुद्रण	:	Click Print Shoppe Sector-17, Chandigarh
आवरण	:	Martin Gemperle, Paris, France

कथामृतकार श्री 'म' की सेवक-सन्तान
स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज को
जो
श्री म दर्शन-ग्रन्थमाला के माध्यम से
श्रीरामकृष्ण-कथा को,
कथामृत में कही-अनकही ठाकुर-वाणी को
हम तक लाए।

'नूपुर' नाम क्यों ?

ठाकुर दक्षिणेश्वर में नरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्तों के संग में हैं। ठाकुर गाना गा रहे हैं—

बोल रे श्रीदुर्गा नाम।
(ओरे आमार आमार आमार मन रे)।
. . .
यदि बोलो छाड़ो-छाड़ो मा, आमि ना छाड़िबो।
बाजन **नूपुर** होये मा तोर चरणे बाजिबो॥*

दीदी जी (श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता) कहा करतीं कि ठाकुर-वाणी का अक्षर-अक्षर है 'नूपुर'। इन 'नूपुरों' की झंकार से सब पाठक ठाकुर का शुद्ध प्यार पाएँ, इस अभिलाषा से ही उन्होंने अपने गुरु महाराज के 101वें जन्म-दिन पर सन् 1994 में स्मारिका-रूप में वार्षिक पत्रिका का प्रारम्भ '**नूपुर**' नाम से किया था। उनका विश्वास था कि ठाकुर-वाणी के पठन-श्रवण-मनन और पालन से व्यक्ति स्वयं बन जाता है माँ के चरणों का 'नूपुर'।

---

* ओ मेरे मन, तू दुर्गा-दुर्गा नाम बोल। ... यदि कहो छोड़, छोड़, किन्तु मैं नहीं छोड़ूँगा। हे माँ, मैं तेरे चरणों का **नूपुर** बनकर बजूँगा।]

— कथामृत भाग II, सप्तदश खण्ड, द्वितीय परिच्छेद

अनुक्रमणिका

निवेदन	...	7
1 'कथामृत' और ईश्वर-दर्शन	...	11
2 God Realisation— The Aim of Life	...	31
3 God Realisation— 'Kathamrita-I'	...	40
4 The Goal of Human Life— Ma Sarada	...	49
5 हे माँ! हमारे मन को शुद्ध कर दो	...	58
6 मनुष्य-जीवन का उद्देश्य— श्री 'म'	...	63
7 The Goal of Human Life— Swami Vivekananda	...	75
8 स्वामी नित्यात्मानन्द की दृष्टि में मनुष्य-जीवन का उद्देश्य	...	85
9 मानव-जीवन का उद्देश्य— श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता	...	95

श्री 'म' ट्रस्ट

श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के प्रणेता श्री महेन्द्रनाथ गुप्त, बाद में मास्टर महाशय वा श्री म (M.) के नाम से विख्यात हुए।

इन्हीं श्री म के अन्तरंग शिष्य थे स्वामी नित्यात्मानन्द जो 'श्री म दर्शन' ग्रन्थमाला के प्रणेता हैं। और वे ही हैं श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) के संस्थापक।

अपने जीवन में ठाकुर-वाणी का अक्षरश: पालन करने वाले श्री म के पास दीर्घकाल तक रहकर स्वामी नित्यात्मानन्द जी को विश्वास हो गया था कि जगत् के सकल काम-काज करते हुए भी मन से ईश्वर के साथ रहा जा सकता है और यही है शाश्वत शान्ति तथा परमानन्द का सहज, सरल उपाय। परमानन्द की प्राप्ति ही है मनुष्य-जीवन का एकमात्र उद्देश्य। इसी परमानन्द की प्राप्ति जन-जन को हो, इस उद्देश्य से स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने अपने प्रथम गुरु श्री म की स्मृति में 12 दिसम्बर सन् 1967 को श्री म ट्रस्ट (श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट) को रोहतक में रजिस्टर करा दिया था जो बाद में चण्डीगढ़ ले आया गया। तब से लेकर आज तक ठाकुर-कृपा से ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसार का कार्य निरन्तर चल रहा है और आगे बढ़ रहा है।

श्री म ट्रस्ट से जुड़े ठाकुर-भक्तों/सेवकों पर ठाकुर इसी तरह अपना शुद्ध प्यार बनाए रखें, यही उनके श्री चरणों में प्रार्थना है।

—प्रेसिडेंट, श्री म ट्रस्ट

निवेदन

ईश्वर-दर्शन वा ईश्वर-साक्षात्कार वा आत्म-दर्शन वा आत्म-साक्षात्कार— एक ही बात। पर ये ईश्वर हैं क्या? और मनुष्य को इनके दर्शन की, इनके साक्षात्कार की आवश्यकता ही क्यों?

हमें लगता है कि हमारे पास सब कुछ तो है— बल, बुद्धि, पैसा, विद्या, घर, परिवार, सुन्दर देह, सुख के सभी साधन। फिर हमें ईश्वर की क्या आवश्यकता है? पर थोड़ा दु:खी हुए कि मुख के निकल पड़ा— हे या हाय राम, अल्लाह, कृष्ण, गॉड, दुर्गा आदि-आदि। फिर हम मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, गिर्जाघर आदि में जाते हैं या फिर दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर हाथ जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना करने लगते हैं—

''हे मालिक! हे ईश्वर! हे भगवान! मेरी रक्षा करो! मुझे बचाओ। मेरा दु:ख दूर कर दो।''

अर्थात् ईश्वर की आवश्यकता ही न समझने वाले को भी ईश्वर/भगवान याद आ ही गए, दु:ख में ही सही। सत्य तो यह है कि व्यक्ति कुछ भी कहता रहे, किसी न किसी रूप में ईश्वर में विश्वास करता ही है।

तो भी जिज्ञासु मन में सदा से प्रश्न रहा है— यह समस्त संसार, ये चाँद-तारे, यह सूर्य, ये पर्वत, नाना जन्तु, विविध वनस्पतियाँ, नदियाँ, समुद्र आदि किसने बनाए? अवश्य, ये सब किसी मनुष्य ने तो बनाए नहीं। पर इनका रचयिता कोई तो होगा। इनके पीछे किसी का हाथ तो अवश्य है। कोई तो सत्ता है, शक्ति है जिसने यह सब बनाया।

इसी शक्ति को 'ईश्वर' कहा गया है।

इसी शक्ति को जानने के लिए, पहचानने के लिए वेद-उपनिषदों के ऋषियों ने तपस्या की, साधना की और अपनी तपस्या के बल पर उन्होंने कुछ सत्यों का अनुभव किया। ईसामसीह, भगवान बुद्ध, महावीर जैन, गुरु नानक, श्रीरामकृष्ण, महर्षि रमण आदि विश्व के अनेक विचारकों ने, साधु-सन्तों ने अपने-अपने तप-बल के आधार पर अपने-अपने ढंग से अनेक सत्यों की अनुभूति की। और सभी एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे कि— 'ईश्वर हैं और उन्हें अनुभव किया जा सकता है'

नरेन्द्र (बाद में स्वामी विवेकानन्द) ने प्रथम मुलाकात में ही श्रीरामकृश्ण से पूछा था— 'महाशय! क्या आपने ईश्वर को देखा है?'

श्रीरामकृष्ण का उत्तर था—

> ''हाँ! मैंने ईश्वर को देखा है। जिस प्रकार तुम्हें देख रहा हूँ, उसी तरह। नहीं, इससे भी अधिक स्पष्ट रूप से। और जैसे मैं कहता हूँ, वैसे करो तो तुम भी देख सकते हो।''

परन्तु ईश्वर कोई ऐसी वस्तु अथवा व्यक्ति तो हैं नहीं जिन्हें इन चर्म-चक्षुओं से देखा जा सके। और फिर प्रश्न यह भी है कि ईश्वर को देखना ही कौन चाहता है? श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—

> ''....स्त्री-पुत्र के लए व्यक्ति घड़ों रोता है, रुपए-पैसे के लिए लोग रो-रो कर नदियाँ बहा देते हैं, किन्तु ईश्वर के लिए कौन रोता है?...''*

ठीक ही तो है। हम सभी प्राय: ऐसा ही करते हैं। हम पति-पत्नी, सन्तान, बन्धु-बान्धव, मान-सम्मान, रुपया-पैसा, नौकरी-व्यवसाय आदि के लिए ही व्याकुल हुए रहते हैं, इन्हीं की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, और इन्हीं के साथ बँधे रहते हैं अन्त तक। फिर चाहते हैं ये सभी मेरे पास बने रहें मेरी अन्त तक और सदा-सर्वदा मेरे अनुकूल भी रहें। यदि कभी ऐसा न हो तो मन में भारी दु:ख, क्लेश, पीड़ा, अवसाद।

ऋषियों ने, साधु-सन्तों ने अपने अनुभव के आधार पर संसार की

---

* श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत-I, श्री म ट्रस्ट प्रकाशन, 1998, पृ० 31

असारता को देखा था और डंके की चोट पर कहा था कि—

(1) ईश्वर ही एकमात्र सत्य, नित्य वस्तु है

(2) यह संसार असत्य है, अनित्य है।

फिर हम क्यों न सत्य को, नित्य को ही पकड़ें? पर यह भी सत्य है कि रहना तो हमें इसी असत्य, इसी अनित्य संसार में ही है। तो क्या किया जाए?

कलियुग के सद्य अवतार श्रीरामकृष्ण ने भी इस बात को तो स्वीकार किया ही है कि यह संसार दु:खमय है, ज्वलन्त-अनल है। पर साथ ही यह भी कहा है कि इसी अनित्य, इसी दु:खमय संसार को आनन्द की कुटिया भी बनाया जा सकता है। कैसे? उपाय बताते हुए श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—

'पहले ईश्वर-लाभ, फिर संसार'

अर्थात् पहले हम जान लें कि मैं कौन हूँ; ईश्वर क्या हैं, कौन हैं; मेरा ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है और फिर हम यह जान लें कि इस संसार का स्वरूप क्या है, इसका स्वभाव क्या है। यह सब जान लेने के बाद हम संसार में रहने या गृहस्थ करने जाएँगे तो संसार की ज्वाला से बचे रह सकेंगे। यही है ईश्वर-लाभ या ईश्वर-दर्शन।

इस वर्ष के नूपुर का विषय ही है— 'ईश्वर-दर्शन मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है।' इसी विषय को लेकर ठाकुर रामकृष्ण, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द, श्री म, उनके शिष्य स्वामी नित्यात्मानन्द, आगे उनकी शिष्या श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के विचार, उनके निजी अनुभव, उनके सन्देशों को संजोने का प्रयत्न किया गया है इस नूपुर में। सभी ने ईश्वर-दर्शन, ईश्वर-प्राप्ति की व्याख्या की है अपने-अपने तरीके से। आइए, देखें— जानें— समझें उनके विचार, उनके सन्देश। फिर अपनी-अपनी प्रकृति, अपने-अपने मन की गठन व अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनका अपने जीवन में पालन करें और इस दु:खमय संसार को भी मज़े की कुटिया बना लें।

यही है ईश्वर-दर्शन, ईश्वर-प्राप्ति!

— निर्मल मित्तल

श्रीरामकृष्ण परमहंस
(18-2-1836 – 16-8-1886)

1

'कथामृत' और ईश्वर-दर्शन

26 फरवरी, 1982 को श्री म ट्रस्ट द्वारा 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत-सेन्टीनरी मेमोरियल' नाम से अंग्रेज़ी में एक वृहद् ग्रन्थ प्रकाशित किया गया था। इस ग्रन्थ में 'प्रबुद्ध भारत' (मायावती) के तत्कालीन सम्पादक-मण्डल के स्वामी आत्मरूपानन्द जी का 'Growing with the Gospel' नाम से एक लेख प्रकाशित हुआ था। 1996 में श्री म ट्रस्ट की वार्षिक स्मारिका 'नूपुर' में इस लेख का हिन्दी-अनुवाद छपा।

निम्नलिखित पंक्तियाँ उसी लेख से उद्धृत हैं :

''हाल ही की एक वार्ता, 'दे लिव्ड विद गॉड-एम.' में सेंट लुई (अमरीका) के स्वामी चेतनानन्द ने एक मज़ेदार कथा सुनाई। उन्होंने कहा, ''हमारे एक अध्यक्ष स्वामी ने मज़ेदार बात बताई। उनके सेक्रेटरी एक युवक को उनके पास लाए और बोले, 'महाराज, कृपया इस युवक को आशीर्वाद दें। यह कॉलिज में पढ़ता है। संन्यासी होना चाहता है। यह 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत' का पाठ करता है।' अध्यक्ष स्वामी ने कहा, 'क्या? 'कथामृत' पढ़ने से, तुम कहते हो, यह संन्यासी

हो जाएगा! इससे कहो कि 'स्वामी विवेकानन्द का साहित्य-संग्रह' पढ़े। उसी से प्रेरणा पाकर यह संन्यासी होने मठ में जाएगा। **'कथामृत' पढ़ने से तो इसे ईश्वर-दर्शन ही हो जाएगा, संन्यासी होने की जरूरत नहीं...।''**

आइए देखें ऐसा क्या है 'कथामृत' में कि इसके पढ़ने से ही 'ईश्वर-दर्शन' हो जाएगा? और ईश्वर-दर्शन के लिए संन्यासी होने की भी जरूरत नहीं। कथामृत में है—

— श्रीरामकृष्ण की दैनिक दिनचर्या का सजीव चित्रण।
— वे क्या-क्या करते हैं, कैसे रहते हैं, इसका चित्रण।
— कौन-कौन-से भक्त उनके पास आते हैं और क्यों?— इन सबका ब्यौरा।
— जिज्ञासु भक्तों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर ठाकुर किस शैली में देते हैं— क्या बोझिल लगने वाली उपदेशात्मक शैली में अथवा अत्यन्त सीधी-सादी परन्तु मर्मस्पर्शी शैली में, वह भी प्रसंग के अनुकूल कथा-गल्पों से संयुक्त करके?
— अपनी जिज्ञासाओं की पूर्ति होने पर आगन्तुक की, भक्त की क्या अवस्था हो जाती है?— आगन्तुकों/भक्तों के साथ उनका हँसी-मज़ाक, विनोद, आमोद-प्रमोद।
— और है श्रीरामकृष्ण के सदा-सर्वदा 'सहास्य वदन' व आनन्द से भरपूर मुख का दर्शन।
— इससे भी परे है उनकी मुहुर्मुहुः होने वाली समाधि का दर्शन, उनका स्वयं का दिव्य गान व नृत्य।

इसके अतिरिक्त और भी क्या-क्या नहीं है इस ग्रन्थ में! इसमें कलियुग के सद्य अवतार ठाकुर रामकृष्ण की बातें, उनके क्रिया-कलाप, उनके पास आने वाले लोग, वहाँ की सभी गतिविधियाँ, वह परिवेश— आज भी जीवन्त हैं कथामृत

में। श्रद्धावान पाठक आज भी इनके माध्यम से ईश्वर के अवतार रामकृष्ण का संस्पर्श पाकर, उनकी बातों को अनायास ही हृदयंगम कर, उनके बताए मार्ग पर चल कर स्वयं उस आनन्द का स्पर्श पा सकता है जिसमें ठाकुर सदा सराबोर रहते थे। और यही है ईश्वर-दर्शन।

'कथामृत' में वर्णित ठाकुर के साथ हुए प्रथम चार दर्शनों में ही कथामृतकार महेन्द्रनाथ गुप्त वा मास्टर महाशय वा श्री म के मन का रूपान्तरण हो गया था। ठाकुर के रूप में उन्हें हो गया था भगवान-लाभ, ईश्वर-लाभ।

कैसे ?— यह देखने, जानने के लिए आइए हम इन प्रथम चार दर्शनों पर संक्षेप में दृष्टिपात करते हैं :

सब कुछ होते हुए भी, सभी सुख-सुविधाओं के बावजूद भी हमें प्राय: शान्ति नहीं होती। कोई-न-कोई कमी खटकती रहती है। इसके विपरीत महापुरुषों को हर समय, प्रति पल आनन्द में देखा जाता है। कोई भी स्थिति-परिस्थिति उनके आनन्द को बाधित नहीं कर पाती। वे स्वयं तो आनन्द में रहते ही हैं पर जहाँ वे होते हैं; वहाँ के, अपने आस-पास के, स्थान को भी आनन्द से ओत-प्रोत कर देते हैं। जीवन के दुख-कष्टों से तंग आकर आत्महत्या तक की बात सोचने वाले (श्री म) का मन भी उस महापुरुष को देखकर, उनके आस-पास का स्थान, वातावरण देखकर आनन्द-सागर में अवगाहन करने लगता है और उसका दुख, कष्ट, क्लेश, अवसाद तो एकबारगी भाग ही जाता है। और इस प्रकार उसके मन को किसी भी अप्रिय मरणान्तक संकल्प के बारे में पुनर्विचार का अवसर मिल जाता है, घातक घड़ी टल जाती है।

28 वर्षीय बुद्धिजीवी महेन्द्रनाथ गुप्त के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। विकट घरेलू परिस्थितियों से जूझते हुए आत्महत्या

में ही एकमात्र उनका समाधान देखकर वे रात्रि के समय घर से निकल पड़े। ईश्वरेच्छा से तब पत्नी साथ हो ली। पत्नी को लेकर अपनी बहन के घर गए। अगले दिन प्रातः उनका भानजा सिधु साथ हो लिया। घूमते-घूमते सायं के समय रानी रासमणि के मन्दिर दक्षिणेश्वर पहुँच गए और बाग में सदर फाटक से प्रवेश करके महेन्द्रनाथ गुप्त और सिधु सीधे ही श्रीरामकृष्ण के कमरे में आ गए।

प्रथम दर्शन

उन्होंने देखा, कमराभर लोग निःस्तब्ध होकर उनका कथामृत-पान कर रहे हैं। ठाकुर तख्तपोश पर पूर्वास्य बैठे हुए सहास्यवदन हरि-कथा कह रहे हैं। भक्तगण ज़मीन पर बैठे हुए हैं। मास्टर[1] खड़े हुए अवाक् होकर देख रहे हैं। उन्हें बोध हुआ :

जैसे साक्षात् शुकदेव भागवत-कथा कह रहे हैं और वहाँ सर्वतीर्थों का समागम हुआ है। अथवा जैसे श्री चैतन्य पुरी-क्षेत्र में रामानन्द, स्वरूप आदि भक्तों के संग बैठे हुए हैं और भगवान का नाम-गुण-कीर्त्तन कर रहे हैं।

मास्टर अवाक् होकर देखते-देखते सोचते हैं—

आहा! कैसा सुन्दर स्थान! कैसा सुन्दर मनुष्य! कैसी सुन्दर कथा! यहाँ से हिलने की इच्छा नहीं होती।

उनके मन में आया— एक बार देख तो लूँ कहाँ पर आया हूँ। मास्टर उठे और वहाँ के मन्दिरों की आरती आदि देखी। पर उनका मन तो खेंच रखा था श्रीरामकृष्ण ने। वे दोबारा श्रीरामकृष्ण के कमरे में आए। कमरे का द्वार ढका हुआ था। बाहर दासी वृन्दे बैठी थी। उससे पूछने पर मास्टर को पता चला—

— ठाकुर तो यहाँ बहुत दिनों से हैं।

— ये किताबें-शिताबें नहीं पढ़ते। ये सब तो इनके मुख में हैं।

---

1 श्री म

'ठाकुर श्रीरामकृष्ण पुस्तकें पढ़ते ही नहीं', सुनकर मास्टर और भी अवाक्! वे तो यही मानते आए हैं कि पुस्तकें पढ़ने-लिखने से ही ज्ञान होता है।

दासी वृन्दे के कहने पर मास्टर ने कमरे में प्रवेश किया। फिर हाथ जोड़कर प्रणाम किया। ठाकुर श्रीरामकृष्ण से बैठने की अनुमति पाकर वे और सिधु जमीन पर बैठ गए। ठाकुर के पूछने पर मास्टर ने अपना समस्त परिचय दे दिया। किन्तु देखने लगे—

ठाकुर बीच-बीच में अन्यमनस्क हो रहे हैं। (पीछे सुना इसी का नाम भाव है। ...पीछे फिर सुना और देखा, ठाकुर का सन्ध्या के पश्चात् इसी प्रकार का भावान्तर प्रायः हो जाता है।)

....

और कुछ बातचीत के बाद मास्टर ने प्रणाम करके विदा ली।

ठाकुर बोले— ''फिर आइयो (आबार ऐशो)।''

मास्टर लौटते समय सोचने लगे—

ये सौम्य कौन हैं, जिनके पास से लौट कर जाने की इच्छा नहीं हो रही है! पुस्तक बिना पढ़े क्या मनुष्य महत् होता है?— कैसा आश्चर्य! फिर दोबारा आने की इच्छा हो रही है! इन्होंने भी कहा है, आबार ऐशो (फिर आइयो)। कल या परसों प्रातः आऊँगा।

'सुन्दर' और 'सौम्य' मूर्ति, आनन्द स्वरूप भगवान श्रीरामकृष्ण ने मास्टर के मन में अपने प्रति ऐसा खिंचाव उत्पन्न कर दिया कि एकबारगी तो उनके मन का अवसाद जाता रहा और वे पुनः शीघ्र ही श्रीरामकृष्ण से मिलने को इच्छुक हो रहे हैं।

द्वितीय दर्शन

दूसरी बार मास्टर प्रातः आठ बजे ठाकुर के पास पहुँच गए। ठाकुर ने स्वागत किया। फिर मास्टर से एक-दो सामान्य से

परिचयात्मक प्रश्न पूछे। फिर ठाकुर हठात् बोले :

प्रताप का भाई आया था। यहाँ पर कई दिन तक था। काज-कर्म नहीं। कहता था, मैं यहाँ पर रहूँगा। स्त्री, पुत्र, कन्या— सबको ससुराल में छोड़ आया है। बहुत-से बच्चे हैं। मैंने डाँटा, 'देखो तो लड़के-बच्चे हुए हैं। उन्हें क्या फिर उस मोहल्ले के लोग खिलाएँगे, पिलाएँगे, बड़ा करेंगे? लज्जा नहीं आती कि स्त्री-बच्चों को कोई और खिलाता है, और उन्हें ससुराल में डाल रखा है।' मैंने खूब डाँटा और काज-कर्म खोजने के लिए कहा। तब फिर कहीं यहाँ से जाने को हुआ।

पाठक को लगता है कि ठाकुर ने बिना किसी प्रसंग के प्रताप के भाई की बात क्यों कही? पर अन्तर्यामी ठाकुर तो बिना जनाए ही जान गए थे, 'यह (मास्टर) आत्म-हत्या के विचार से घूम रहा है।' प्रताप के भाई की बात उठाकर ठाकुर ने मास्टर को उनका कर्त्तव्य समझा दिया और उनकी आत्महत्या सम्बन्धी सोच पर एक ओर तो एकाएक प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया तथा दूसरी ओर, निराश-हताश जीव को अपना अन्तर्यामी रूप दिखा कर आश्वस्त भी कर दिया।

अब ठाकुर और अधिक जानकारी के लिए मास्टर से कुछ बातें पूछ रहे हैं :

— क्या तुम्हारा विवाह हो गया है?

— क्या तुम्हारे बच्चे हुए हैं?

— अच्छा, तुम्हारी पत्नी कैसी है? विद्याशक्ति कि अविद्याशक्ति?

इस प्रश्न के उत्तर में मास्टर ने कहा :

मास्टर— जी भली हैं, किन्तु अज्ञानी हैं।

श्रीरामकृष्ण *(विरक्त होकर)*— और तुम ज्ञानी?

ज्ञान किसे कहते हैं और अज्ञान किसे कहते हैं, वे अब तक भी

जानते नहीं हैं। अब तक इतना ही जानते हैं कि लिखना-पढ़ना सीख लेना और पुस्तक पढ़ सकना ही ज्ञान होता है। यह भ्रम पीछे दूर हुआ था। तब सुना कि ईश्वर को जानने का नाम है ज्ञान, ईश्वर को न जानने का नाम ही है अज्ञान। ठाकुर ने कहा 'तुम क्या ज्ञानी?'— मास्टर के अहंकार को फिर और विशेष आघात लगा।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, तुम्हारा साकार पर विश्वास है कि निराकार पर?

मास्टर *(अवाक् होकर स्वगत)*— साकार पर विश्वास रहने पर क्या फिर निराकार पर भी विश्वास होता है? 'ईश्वर निराकार है'— ऐसा विश्वास रहने पर 'ईश्वर साकार है', फिर ऐसा विश्वास क्या हो सकता है? विरुद्ध अवस्थाएँ दोनों ही क्या सत्य हो सकती हैं? सफेद वस्तु— दूध, क्या फिर काला हो सकता है?

मास्टर— जी निराकार, मुझे तो यही अच्छा लगता है।

श्रीरामकृष्ण— सो तो अच्छा है। किसी एक पर विश्वास रहने से ही हुआ। निराकार पर विश्वास, वह तो अच्छा ही है। तो भी फिर ऐसी बुद्धि न करो कि यह ही केवल सत्य है और सब मिथ्या। यही जानो कि निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य। तुम्हारा जो भी विश्वास है, उसको ही पकड़े रहो।

मास्टर 'दोनों ही सत्य हैं'— यह बात बार-बार सुनकर अवाक् हो गए। यह बात तो उनकी पोथीगत विद्या में नहीं है।

उनका अहंकार तीसरी बार चूर्ण होने लगा। किन्तु तब तक भी सम्पूर्ण नहीं हुआ था। तभी फिर और थोड़ा-सा तर्क करने के लिए अग्रसर हुए।

मास्टर— जी, वे साकार हैं, यह विश्वास तो चलो जैसे भी, हो भी गया। किन्तु मिट्टी की प्रतिमा तो वे नहीं हैं?

श्रीरामकृष्ण— मिट्टी की क्यों भई? चिन्मयी प्रतिमा!

मास्टर चिन्मयी प्रतिमा समझ नहीं सके। कहा,

''अच्छा, जो मिट्टी की मूर्ति की पूजा करते हैं, उन्हें तो समझा देना उचित है

कि मिट्टी की मूर्ति में ईश्वर नहीं हैं, और मूर्ति के सामने ईश्वर को उद्देश्य करके पूजा मत करो, मिट्टी को पूजना उचित नहीं।''

श्रीरामकृष्ण *(विरक्त होकर)*— ....तुम कौन हो समझाने वाले? जिनका जगत है, वे समझाएँगे। उन्होंने इस जगत को रचा है— चन्द्र, सूर्य, ऋतु, मनुष्य, जीव-जन्तु बनाए हैं, जीव-जन्तुओं के आहार का उपाय, पालन करने के लिए माँ-बाप बनाए हैं, माँ-बाप का स्नेह बनाया है, वे ही समझाएँगे। उन्होंने इतना किया है, फिर यह उपाय नहीं करेंगे? यदि समझाना आवश्यक होगा, तो वे ही समझा देंगे। वे तो अन्तर्यामी हैं। यदि वैसी मिट्टी की मूर्ति की पूजा करने में, कुछ भूल रहती है, तो वे क्या जानते नहीं कि उन्हें ही पुकारा जा रहा है? वे उसी पूजा से ही सन्तुष्ट होते हैं। उसके लिए तुम्हारे सिर में व्यथा क्यों है? तुम वही चेष्टा करो, जिससे तुम्हें स्वयं ज्ञान हो, भक्ति हो।

इस बार उनका अहंकार पूरी तरह चूर्ण हो गया।

वे विचार करने लगे, 'ये जो कह रहे हैं, वही तो ठीक है। मुझे समझाने जाने की क्या आवश्यकता है? मैंने क्या ईश्वर को जान लिया है? ना ही मेरी उनके ऊपर भक्ति हुई है। 'आपनि शुने स्थान पाय ना, शंकरा के डाके' (अपने लेटने को तो स्थान नहीं मिला, शंकर को पुकारना)। जानना नहीं, सुनना नहीं, दूसरों को समझाने के लिए चल पड़ना। बड़ी ही लज्जा की बात है, और हीन बुद्धि का कार्य है। यह क्या गणित है, अथवा इतिहास, या साहित्य कि अन्य को समझाएँगे। यह तो है ईश्वर-तत्त्व। ये जो-जो बातें कह रहे हैं, मन में खूब लग रही हैं।'

ठाकुर के साथ उनका यही प्रथम और अन्तिम तर्क!

'ज्ञान-अज्ञान', 'साकार-निराकार' एवं 'मिट्टी की मूर्ति' के विषय में मास्टर की बुद्धि का भ्रम दूर हुआ, उन्होंने अन्तर्निरीक्षण किया, उनका अहंकार नष्ट हुआ और ठाकुर की बातों ने उनकी बुद्धि में प्रवेश पा लिया। मास्टर को अब विश्वास हो गया कि श्रीरामकृष्ण मेरे गुरु हैं। अब इनसे ही मुझे अपने प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे। अत:

विनम्र भाव से अब वे श्रीरामकृष्ण से एक-एक करके चार प्रश्न पूछते हैं :

— ईश्वर में मन कैसे हो ?

— गृहस्थ में किस प्रकार रहना होगा ?

— क्या ईश्वर का दर्शन किया जाता है ?

— कैसी अवस्था में उनका दर्शन होता है ?

ये चारों प्रश्न प्रत्येक गृहस्थ-साधक के मन में उठने ही चाहिएँ।

मास्टर महाशय के व्याज से इन प्रश्न-उत्तरों से हम सभी गृहस्थों को दिशा-निर्देश मिल रहा है।

ठाकुर ने इन प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दिए हैं। हम इन्हें संक्षेप में देखते हैं :

मास्टर *(विनीत भाव से)*— **ईश्वर में मन कैसे हो ?**

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर का नाम-गुण-गान सर्वदा करना चाहिए। और सत्संग— ईश्वर के भक्त अथवा साधु के पास बीच-बीच में जाना चाहिए। गृहस्थ के भीतर और विषय-कार्य में रात-दिन रहने से ईश्वर में मन नहीं होता। बीच-बीच में निर्जन में जाकर उनका चिन्तन करना बहुत आवश्यक है। शुरु-शुरु की अवस्था में निर्जन न होने से ईश्वर में मन रखना बड़ा ही कठिन है।

''जब पौधा छोटा होता है, तब उसके चारों ओर घेरा लगाना चाहिए। घेरा न होने से बकरी, गाय उसे खा लेते हैं।

''ध्यान करोगे मन में, कोने में और बन में और सर्वदा सत्-असत्-विचार करोगे। ईश्वर ही सत्, अर्थात् नित्य वस्तु, और सब असत् अर्थात् अनित्य। ऐसा विचार करते-करते अनित्य वस्तु का मन से त्याग करोगे।''

मास्टर *(विनीत भाव से)*— **गृहस्थ में किस प्रकार रहना होगा ?**

श्रीरामकृष्ण— सब कार्य करोगे किन्तु मन ईश्वर में रखोगे। स्त्री, पुत्र, बाप, माँ— सब को लेकर रहोगे और सेवा करोगे, मानो वे कितने अपने जन हैं।

किन्तु मन में जानोगे कि ये लोग तुम्हारे कोई नहीं हैं।

''बड़े आदमी के घर की दासी सब काम करती है किन्तु गाँव के अपने घर की ओर मन पड़ा रहता है। और फिर वह मालिक के बच्चों का अपने बच्चों की भाँति पालन करती है। कहती है 'मेरा राम', 'मेरा हरि'— किन्तु मन में खूब जानती है— ये मेरे कोई नहीं हैं।

....

''ईश्वर में भक्ति प्राप्त किए बिना यदि गृहस्थ करने जाओगे, तब तो फिर और भी फँस जाओगे। विपद्, शोक, ताप— इन सब में अधीर हो जाओगे। और फिर जितनी ही विषय-चिन्ता करोगे, उतनी ही आसक्ति बढ़ेगी।

....

''संग-संग विचार करना भी खूब आवश्यक है। कामिनी-काञ्चन अनित्य, ईश्वर ही एकमात्र वस्तु हैं। रुपये से क्या होता है? भात होता है, दाल होती है, कपड़ा होता है, रहने को स्थान होता है— यहीं तक तो। किन्तु इससे भगवान-लाभ नहीं होता। जभी रुपया जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता— इसका नाम है विचार, समझे?''

....

मास्टर— ईश्वर का क्या दर्शन किया जाता है?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, अवश्य किया जाता है। बीच-बीच में निर्जन-वास, उनका नाम-गुण-गान, वस्तु-विचार— ये समस्त उपाय अवलम्बन करने चाहिएँ।

मास्टर— कैसी अवस्था में उनका दर्शन होता है?

श्रीरामकृष्ण— खूब व्याकुल होकर क्रन्दन करने से उनको देखा जाता है। स्त्री-पुत्र के लिए व्यक्ति घड़ों रोता है, रुपये-पैसे के लिए रोग रो-रो नदियाँ बहा देते हैं, किन्तु ईश्वर के लिए कौन क्रन्दन करता है?

....

''व्याकुलता होने पर अरुण उदय हो जाता है। तत्पश्चात् सूर्य दिखाई

देगा। व्याकुलता के बाद ईश्वर-दर्शन।

....

''बात तो यही है, ईश्वर को प्यार करना चाहिए। माँ जैसे लड़के को प्यार करती है, पतिव्रता जैसे पति को प्यार करती है, विषयी जैसे विषय को प्यार करता है— इन तीनों जनों का प्यार, यही तीन खेंच, एकत्र कर लेने पर जितना होता है उतना ईश्वर को दे सकने पर उनका दर्शन प्राप्त होता है।

''व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए।

''बिल्ली का बच्चा केवल मियुँ-मियुँ करके माँ को पुकारना जानता है। माँ उसको जहाँ पर रखती है, वह वहीं पर ही रहता है— कभी-कभी रसोई में, कभी-कभी धरती पर, कभी फिर बिस्तरे के ऊपर रख देती है। उसको कष्ट होने पर वह केवल मियुँ-मियुँ करके पुकारता है, और कुछ नहीं जानता। माँ कहीं भी रहती है, इस मियुँ-मियुँ को सुनकर आ जाती है।''

ईश्वर-दर्शन की व्याकुलता हो और बिल्ली के बच्चे की भाँति माँ-ईश्वर में पक्का विश्वास हो तो ईश्वर दर्शन देंगे ही देंगे।

तृतीय दर्शन

मास्टर की व्याकुलता उन्हें फिर आनन्द के विग्रह श्रीरामकृष्ण के पास खींच लाई। तीसरी बार वे 5 मार्च को सायं चार बजे ठाकुर के पास पहुँचे। उन्होंने देखा ठाकुर भक्तों के संग सहास्यवदन बातें कर रहे हैं। वहाँ नरेन्द्र भी है। उन्होंने अनेक विषयों पर चर्चा सुनी :

— सर्वभूतों में नारायण हैं।

— दुष्ट लोगों के हाथ से अपनी रक्षा हेतु तमोगुण-प्रदर्शन आवश्यक है।

— जीव चार प्रकार के हैं।

— संसारी जीव के लिए उपाय।

— नरेन्द्र (भावी विवेकानन्द) का व्यक्तित्व।

ठाकुर समझा रहे हैं :

....

1. ईश्वर सर्वभूतों में हैं। तो भी भले लोगों के संग में मेल-मिलाप चलता है, मन्दे लोगों के निकट रहते हुए फासला रखना चाहिए। बाघ के भीतर भी नारायण हैं, इसीलिए बाघ का आलिंगन नहीं चलता।

....

''शास्त्र में है 'अपो नारायण'— जल नारायण है। किन्तु कोई जल तो ठाकुर-सेवा में लगता है, और फिर कोई जल कुल्ला-हाथ-मुँह धोने में, बर्तन माँजने, कपड़े धोने में ही केवल चलता है, किन्तु आहार या ठाकुर-सेवा में नहीं चलता। उसी प्रकार साधु-असाधु, भक्त-अभक्त सबके ही हृदय में नारायण हैं। किन्तु असाधु, अभक्त, दुष्ट लोगों के संग व्यवहार नहीं चलता, मेल-मिलाप नहीं चलता।

....

2. लोगों के साथ वास करने के लिए, दुष्ट लोगों के हाथ से अपनी रक्षा करने के लिए, थोड़ा-सा तमोगुण भी दिखाना प्रयोजनीय है। किन्तु 'वह अनिष्ट करेगा', समझ कर उल्टे उसका अनिष्ट करना उचित नहीं।

....

3. ईश्वर की सृष्टि में नाना प्रकार के जीव-जन्तु, पेड़-पौधे हैं। जानवरों के मध्य भले हैं, मन्दे हैं। बाघ जैसे हिंसक जन्तु हैं। वृक्षों के मध्य अमृत की न्यायीं फल होते हैं— ऐसे हैं। और फिर विष-फल भी हैं। उसी प्रकार मनुष्यों के मध्य भला है, मन्दा भी है, असाधु भी है, संसारी जीव है और फिर भक्त भी है। ''जीव चार प्रकार के हैं— बद्ध जीव, मुमुक्षु जीव, मुक्त जीव और नित्य जीव।

— नित्य जीव— जैसे नारद आदि। ये संसार में रहते हैं जीवों के मंगल के लिए, जीवों को शिक्षा देने के लिए।

— बद्ध जीव— विषय में आसक्त हुए रहते हैं, और भगवान को भूले रहते

हैं— भूल कर भी भगवान का चिन्तन नहीं करते।

— मुमुक्षु जीव— मुक्त होने की इच्छा करते हैं। किन्तु उनमें से कोई मुक्त हो पाते हैं, कोई नहीं हो पाते।

— मुक्त जीव— जो संसार में कामिनी-काञ्चन में आबद्ध नहीं हैं, जैसे साधु, महात्मागण, जिनके मन में विषयबुद्धि नहीं, और जो सर्वदा ही हरि-पादपद्म-चिन्तन करते हैं।

''जैसे तालाब में जाल डाला हुआ है। दो-चार मछलियाँ इतनी सयानी हैं कि कभी भी जाल में नहीं गिरतीं— यह है नित्य जीव का उपमास्थल।

''किन्तु बहुत सी मछलियाँ जाल में पड़ ही जाती हैं। इनमें से कितनी ही भागने की चेष्टा करती हैं, ये मुमुक्षु जीव की उपमा हैं।

''किन्तु सारी ही मछलियाँ भाग नहीं सकतीं। दो-चार ही केवल ध्याँग-ध्याँग करके जाल में से भाग जाती हैं। तब लड़के कहते हैं— वह देखो, एक तो बहुत ही बड़ी मछली भाग गई। (यह है मुक्त जीव की उपमा।)

''किन्तु जो जाल में पड़ गई हैं, अधिकांश ही भाग नहीं सकतीं। और भागने की चेष्टा भी नहीं करतीं। बल्कि जाल को मुख में दबाकर तालाब के कीचड़ के भीतर चुप करके, मुख छिपाकर लेट जाती हैं। मन में सोचती हैं, अब और कोई भय नहीं, हम ठीक हैं। किन्तु जानती नहीं कि मछेरा हड़-हड़ करके खींच कर जमीन पर रख देगा। ये ही हैं बद्ध जीव की उपमा।''

''बद्ध जीव संसार के कामिनी-काञ्चन में बद्ध हुए रहते हैं, हाथ-पैर बँधे हुए रहते हैं। और सोचते भी यही हैं कि संसार में इसी कामिनी-काञ्चन से ही सुख मिलेगा और निर्भय रहते हैं। जानते नहीं कि उसमें ही मृत्यु होगी।

....

4. **एकजन भक्त**— महाशय, इस प्रकार के संसारी जीव का क्या कोई उपाय नहीं?

श्रीरामकृष्ण— उपाय अवश्य है। बीच-बीच में साधुसंग और कभी-कभी निर्जन-वास में ईश्वर-चिन्तन करना चाहिए। और विचार करना चाहिए। उनके निकट प्रार्थना करनी चाहिए— मुझे भक्ति-विश्वास दो।

''विश्वास हो जाने पर ही हुआ। विश्वास से बढ़कर और कोई वस्तु

नहीं है।

(केदार के प्रति)— विश्वास का कितना ज़ोर है— वह तो तुम ने सुना है? पुराण में है, रामचन्द्र जो साक्षात् पूर्णब्रह्म नारायण, उन्हें लंका जाने के लिए सेतु बाँधना पड़ा था। किन्तु हनुमान राम-नाम में विश्वास करके छलाँग मार कर पार जा पड़ा। उसे फिर सेतु का प्रयोजन नहीं हुआ।

जीव मात्र पर अहैतुक कृपा करने वाले ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने सामान्य जीव, बद्धजीव को भी विश्वास दिला दिया कि वह भी विश्वास एवं प्रार्थना के बल पर ईश्वर-प्राप्ति कर सकता है। वाह ठाकुर!

5. अब ठाकुर नरेन्द्र के विषय में बता रहे हैं :

''इसी लड़के को देख रहे हो, यहाँ पर एक प्रकार से है। शैतान लड़का जब बाप के पास बैठता है, जैसे हव्वे के पास हो; और फिर जब चाँदनी में खेलता है, तब और एक मूर्ति। ये नित्य सिद्ध के स्तर के हैं। ये लोग कभी भी संसार में बद्ध नहीं होते। थोड़ी वयस् होते ही चैतन्य हो जाता है, और भगवान की ओर चले जाते हैं। ये संसार में आते हैं जीव-शिक्षा के लिए। इन्हें संसार की वस्तु कुछ भी अच्छी नहीं लगती— ये लोग कामिनी-काञ्चन में कभी आसक्त नहीं होते।

नरेन्द्र के व्यक्तित्व का उदाहरण ठाकुर हमारे समक्ष इसलिए रख रहे हैं ताकि उन्हें देख हम भी आगे बढ़ने का प्रयत्न करें।

प्राय: एक घण्टे के बाद सभा भंग हो गई। भक्त इधर-उधर टहल रहे हैं। मास्टर भी पंचवटी इत्यादि स्थानों पर टहल रहे हैं।

आध्यात्मिक और जागतिक जीवन में किस तरह रहना चाहिए, दिन-प्रतिदिन के जीवन में भले-मन्दे सब प्रकार के लोगों के साथ हमारा सामना होता है। उनके साथ हमारा व्यवहार कैसा

हो, दुष्ट लोगों के प्रति द्वेष न रखते हुए भी स्वयं की रक्षा कैसे करें— इन जटिल प्रश्नों का सरल और समीचीन उत्तर पाकर मास्टर और अधिक आश्वस्त हुए।

तत्पश्चात् उन्होंने श्रीरामकृष्ण के कमरे की ओर आकर कुछ और भी देखा— कुछ ऐसा जो उनकी कल्पना में, हम सभी की कल्पना में, सहज में नहीं आ सकता। वह अभूतपूर्व दृश्य जिसका संकेत शास्त्रों में तो भले ही होगा; पर उसका सजीव चित्रण अर्जुन को हुए विराट रूप-दर्शन के चित्रण के समान दुर्लभ है। तो भी मास्टर ने इसे चित्रित करने का प्रयास किया है :—

श्रीरामकृष्ण स्थिर हुए खड़े हैं। नरेन्द्र गाना गा रहे हैं। दो-चार जन भक्त खड़े हुए हैं। मास्टर गाना सुनकर आकृष्ट हुए। ठाकुर के गाने के अतिरिक्त ऐसा मधुर गाना उन्होंने कभी भी, कहीं भी नहीं सुना था। हठात् ठाकुर की ओर दृष्टिपात करते ही वे अवाक् हो गए।

ठाकुर खड़े हुए हैं— निस्पन्द, पलकें हिलती नहीं, निःश्वास-प्रश्वास चल रहा है कि नहीं, यह भी पता नहीं चल रहा!

पूछने पर एक भक्त ने कहा, इसका नाम समाधि है। मास्टर ने इस प्रकार कभी देखा भी नहीं था, सुना भी नहीं था। अवाक् होकर वे सोचने लगे,

भगवान का चिन्तन करते हुए मनुष्य क्या इतना बाह्यज्ञान-शून्य हो जाता है? न जाने कितना अधिक भक्ति-विश्वास होने पर इस प्रकार होता है!

ठाकुर श्रीरामकृष्ण फिर सिहरने लगे। देह रोमाञ्चित हो गया। चक्षुओं से आनन्दाश्रु विगलित हो रहे हैं। बीच-बीच में मानो कुछ देखकर हँस रहे हैं। न जाने .... कैसा अनुपम रूप-दर्शन कर हरे हैं! क्या इसी का नाम भगवान का चिन्मय रूप-दर्शन है? कितना साधन करने पर, कितनी तपस्या के फल से,

कितने परिणाम में भक्ति-विश्वास के बल पर इस प्रकार ईश्वर-दर्शन होता है ?

फिर और गाना चलने लगा।

फिर दोबारा वही भुवन-मोहन हास्य! शरीर उसी प्रकार निस्पन्द, स्तिमित लोचन। किन्तु शायद कोई अपरूप रूप-दर्शन कर रहे हैं और उसी अपरूप रूप का दर्शन करके महानन्द में तैर रहे हैं।

वाह ठाकुर वाह! पहले तो आपने 'विश्वास' और 'भक्ति' को साधक के हृदय में प्रवेश करवाया, फिर अद्‌भुत समाधि-दर्शन द्वारा इस भक्ति और विश्वास को पूरी तरह दृढ़ कर दिया।

चतुर्थ दर्शन

अब तो मास्टर श्रीरामकृष्ण को देखे बिना रह ही नहीं पा रहे। उसी आनन्द भरे हृदय को लेकर मास्टर अगले दिन ही (6 मार्च को) तीन बजे दोपहर के समय फिर आ उपस्थित हुए। मास्टर को घर में प्रवेश करते हुए देखकर ठाकुर उच्च हास्य करके पास बैठे लड़कों से कह उठे,

'भई लो, फिर आ गया!' सब हँसने लगे।

मास्टर आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम करके बैठ गए। पहले तो हाथ जोड़कर खड़े होकर प्रणाम किया करते थे, अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा जन जैसे करता है। किन्तु आज उन्होंने भूमिष्ठ होकर प्रणाम करना सीखा है।

उनके आसन ग्रहण कर लेने पर, श्रीरामकृष्ण क्यों हँस रहे थे— वही नरेन्द्र आदि भक्तों को समझाते हैं,

''देखो, एक मोर को चार बजे दोपहर को अफ़ीम खिला दी थी। उसके दूसरे दिन ठीक चार बजे वही मोर आ उपस्थित हुआ— अफ़ीम का मोहताज हो गया है, ठीक समय अफ़ीम खाने आया है।'' *(सब का हास्य)*।

मास्टर मन-मन में सोच रहे हैं, 'ये ठीक बात ही कर रहे हैं।

घर जाता हूँ, किन्तु दिन-रात इनकी ओर ही मन पड़ा रहता है— कब देखूँगा! कब देखूँगा!! यहाँ पर कोई शक्ति खींच लाती है। मन होने पर भी अन्यत्र नहीं जाया जाता!'

इधर ठाकुर लड़कों के संग अनेक हँसी-मजाक करने लगे मानो इनके समवयस्क हों। हँसी की लहर बढ़ने लगी और आनन्द की हाट लग गई।

मास्टर अवाक् होकर इसी अद्‌भुत चरित्र को देख रहे हैं। सोच रहे हैं, 'क्या इनकी ही पिछले दिन (कल) समाधि और अदृष्टपूर्व प्रेमानन्द देखा था? वही व्यक्ति ही क्या प्राकृत (साधारण) जन की न्यायीं व्यवहार कर रहा है? इन्होंने ही क्या प्रथम दिन उपदेश देने के समय मेरा तिरस्कार किया था? इन्होंने ही क्या 'साकार-निराकार दोनों ही सत्य हैं', कहा था? इन्होंने ही क्या मुझसे कहा था कि ईश्वर ही सत्य है और संसार का समस्त ही अनित्य है? इन्होंने ही क्या मुझसे संसार में दासी की भाँति रहने के लिए कहा था?'

अपने इन विचारों की उधेड़-बुन में खोए सत्ताईस वर्षीय मास्टर फिर से पहले जैसा अभूतपूर्व दृश्य देखने लगे,
'आनन्द' को सघन-मूर्तिमान होते देखने लगे—

ठाकुर गाना गा रहे हैं। और फिर वही 'समाधि'! फिर निस्पन्द स्थिर देह, स्तिमित लोचन। बैठे हुए हैं, जैसे फोटोग्राफ में छवि दिखाई देती है।

भक्तगण अभी-अभी इतनी हँसी-खुशी कर रहे थे, अब सब ही एक दृष्टि से ठाकुर की उसी अद्‌भुत अवस्था का निरीक्षण कर रहे हैं। समाधि-अवस्था का मास्टर ने यह द्वितीय बार दर्शन किया है। अनेक क्षण पश्चात् उस अवस्था का परिवर्तन होने लगा। देह शिथिल हो गई। मुख सहास्य हो गया। इन्द्रियाँ फिर दोबारा अपना-अपना कार्य करने लगीं। चक्षुओं के कोनों से आनन्दाश्रु विसर्जन करते-करते ठाकुर 'राम! राम!!' —यह नाम उच्चारण करते-करते क्रमशः भौतिक जगत में उतरने लगे!

मास्टर सोचने लगे, यही महापुरुष ही क्या लड़कों के संग हँसी-मजाक कर रहे थे? तब तो ये थे बिल्कुल मानो पाँच वर्ष के बालक!

अर्थात् श्रीरामकृष्ण पूर्ण पुरुष हैं, 'आनन्द स्वरूप' भगवान का अवतार हैं, यह विश्वास ठाकुर के समाधि-दर्शनों से मास्टर महाशय के साथ-साथ हम सभी को हो गया है।

इस प्रकार 26 फरवरी, 1882 से 6 मार्च, 1882 तक नौ दिनों की अल्प अवधि में हुए चार दर्शनों में ही श्रीरामकृष्ण ने मास्टर को और मास्टर के माध्यम से हम सबको अपना ईश्वरत्व, अवतारत्व दिखा दिया, उसका स्पर्श करा दिया। और तो और, जीवन से निराश, श्रान्त, क्लान्त तथा आत्महत्या की सोच से निकले मास्टर को ही अपने कथामृत का संवाहक भी बना लिया! यह अद्‌भुत प्रभाव सत्संग का है। सत्संग अर्थात् सत्य के साथ संग। और सत्य है केवल ईश्वर, ईश्वर की वाणी और उस वाणी के लिए अपेक्षित ग्रहण शक्ति। इस ग्रहण शक्ति को पाना है हमें अपने ही प्रयास द्वारा, अपनी ही चेष्टा द्वारा, व्याकुला द्वारा और निरन्तर प्रार्थना द्वारा।

इस अल्प अवधि में ही ठाकुर ने मास्टर को, उनकी धात को, समझ लिया। परीक्षण के लिए वे (श्रीरामकृष्ण) मास्टर से पूछ भी लेते हैं—

''मुझमें तुम्हें क्या बोध होता है?''

मास्टर चुप रहे।

ठाकुर फिर कहते हैं—

''तुम्हें कैसा लगता है, मुझे कितने आने* ज्ञान हुआ है?''

मास्टर— 'आना' यह बात तो नहीं समझ सकता, तो भी ऐसा ज्ञान, प्रेम,

---

* एक रुपया = 16 आने

भक्ति वा विश्वास वा वैराग्य वा उदार भाव कभी भी, कहीं भी नहीं देखा।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण हँसने लगे।

अर्थात् स्वयं को पहचनवा कर ठाकुर आश्वस्त हो गए।

तो जीवन से हताश-निराश मास्टर, देह-त्याग की भावना से घर से निकले मास्टर, अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे मास्टर, मूर्ति-पूजा में विश्वास न रखने वाले मास्टर, 'इंग्लिश जैन्टलमैन' मास्टर के हृदय के भीतर ठाकुर ने अपना भगवदीय रूप प्रवेश करवा ही दिया।

26 फरवरी से 6 मार्च तक मास्टर चार बार ठाकुर से मिलने गए। इन चार दिनों में ठाकुर के क्रिया-कलापों का, उनकी वाणी का मास्टर ने हू-ब-हू चित्रण किया है करीब 25-30 पृष्ठों में (कथामृत प्रथम भाग के प्रथम खण्ड के 2 से 10 तक नौ परिच्छेदों में)। इन 4 दिनों की वाणी, और इन दिनों के क्रिया-कलापों का चित्रण करते ये 25-30 पृष्ठ हमारी सभी जिज्ञासाओं को शान्त कर देते हैं, दैनिक जीवन की सभी समस्याओं का समाधान दे देते हैं। सद्गृहस्थ की ऐसी कोई समस्या ही नहीं रह जाती जिसका समाधान उक्त विवरण में न हो।

इन चार ठाकुर-दर्शनों में, इन चार ठाकुर-सम्पर्कों में श्री म की भाँति ही हममें से प्रत्येक का जीवन बदल देने की, हमारा रूपान्तरण कर देने की क्षमता है, यदि हम भी श्री म की भाँति ही ठाकुर-वाणी का, उनकी बातों का अक्षरश: पालन करें। और तब हम इस ज्वलन्त अनल संसार में रहते हुए भी शाश्वत आनन्द में रह सकेंगे जैसे श्री म रहे। यही है ईश्वर-प्राप्ति।

और फिर स्वामी आत्मरूपानन्द के साथ हम भी कह सकेंगे—
'' 'कथामृत' पढ़ने से ईश्वर-दर्शन ही हो जाएगा।...''

— ईश्वरचन्द्र

श्रीरामकृष्ण परमहंस

- जन्म : 18 फरवरी, सन् 1836 ईसवी।
- स्थान : कामारपुकुर (हुगली ज़िले का अन्तर्वर्ती ग्राम)
- माता–पिता : श्रीमती चन्द्रमणि देवी और श्री क्षुदिराम चट्टोपाध्याय (चैटर्जी)।
- भाई–बहन : दो बड़े भाई, दो बहनें।
- शिक्षा : कुछ दिन पाठशाला में गए। प्रारम्भ से ही अर्थकरी विद्या से विकर्षण। स्कूल में रुचि नहीं। लेख सुन्दर। अद्‌भुत स्मरण–शक्ति।
- विवाह : 22–23 वर्ष की आयु में सन् 1859 में 6–7 वर्षीया सारदा मणि के साथ।
- दक्षिणेश्वर–वास : बड़े भाई रामकुमार की मृत्यु के बाद दक्षिणेश्वर में पुजारी। बाद में पूजा–कर्म से निवृत्त होकर वहीं दक्षिणेश्वर में स्वतन्त्र वास– प्रायः अन्त समय तक।
- महासमाधि : 16 अगस्त, 1886 ईसवी।

■

2

God Realisation —The Aim of Life

Extracts from **'Kathamrita'**

Shri Ramakrishna's advent was to teach mankind that the aim of human life is to realize God and to experience infinite bliss, peace and happiness. He himself not only realized God, but also made his intimate disciples attain God vision who carried on Shri Ramakrishna's message to whole world to show the way to it.

Shri Shri Ramakrishna Kathamrita has passages which talk about God vision and ways to attain it even while living a life of a householder. Below are a few excerpts to show the way and the signs of God-vision realisation.

1. HOW TO SEE GOD

(i) Yearning Heart Required

M.: "Sir, can God be seen?"

Shri Ramakrishna: "Yes. There is no doubt about it.

Going into solitude from time to time,
chanting His name and glories,
practicing discrimination–
these are what you have to do."

M.: "What state of mind leads to God-realization?"

Shri Ramakrishna: "Cry with a deep yearning in your heart and you will see God. People shed pitchers full of tears for wife and children, they weep streams of tears for money, but who cries for God? Call out to God with a longing and yearning heart. Saying this, Thakur sings:

> Cry out with yearning, O mind, and see how
>
> Mother Shyama can withhold Herself from you!
>
> How can Shyama stay away? How can Kali remain away?
>
> O mind, if you are in earnest, bring bel leaves and red hibiscus flowers,
>
> Touched with the sandal paste of devotion, and offer them at Her feet.

"A yearning heart brings the dawn; soon after, the sun is visible. After longing comes God-vision. ....

"The real thing is that you must love God the way a mother loves her son,

> a chaste wife her husband, and
> a worldly man the things of the world.
> When your love for God has the combined intensity
> of all these three, you will see Him.

"One should call upon God with a yearning heart. A kitten knows only how to cry out to its mother, 'Mew, mew.' Wherever the mother puts it, it remains, whether in the kitchen, on the floor, or on the bed. When it feels hurt, it simply cries 'mew, mew' and knows nothing else. Wherever the mother may be, she comes when she hears its mewing."

I.I.V : 26 February 1882

(ii) Purification of Mind

Vijay: "How can we have a vision of this Primal Power? Or how can we have the knowledge of Brahman without attributes?"

Shri Ramakrishna: "Pray to Him with a yearning heart and weep. This will purify your mind. In clear water you can see the reflection of the sun. In the mirror of the 'I,' the devotee sees Brahman with attributes, the Primal Power. But the mirror must be perfectly clean. If there is any dirt, it will not catch the correct reflection.

"As long as there is 'I,' you see the sun in the water of 'I.' There is no other way to see the sun. And as long as you have no means to see the real sun and you see only the reflected sun, that reflected sun is the real sun to you – one hundred percent real. As long as the 'I' is real, the reflected sun is also real – one hundred percent real. This reflected sun is the Primal Power.

"If you want to attain the knowledge of Brahman, proceed toward the real sun through the reflection. Pray to Brahman with attributes, who listens to your prayers. He Himself will grant you the knowledge of Brahman. This is because He who is Brahman with attributes is Himself Brahman without attributes. He who is Shakti is Himself Brahman. One realizes that there is no duality after attaining the ultimate knowledge.

I.XII.IX : 19 October 1884

(iii) Love, gopi-like love

"….God alone is real and eternal. All else is unreal, transitory, lasting just a few days. One must realize this and develop love for God, attachment to God, devotion to Him. The gopis

had such an attraction for Krishna. Here is a song :"

Listen! The flute plays in yonder wood.
There I must go, where Krishna awaits me
on the path.
Tell me, dear friends, will you not come along?
To you, my friends, Krishna is
but a mere name, an empty name,
But to me He is an ache in my heart.
You hear His flute with only your ears,
but I hear it playing in my heart:
Krishna's flute that beckons, ''Come O Radha!
without you there is no beauty in the grove."

Singing this song with tears in his eyes, Thakur says to Keshab and his other devotees, "You may or may not accept Radha and Krishna, but make their feelings of attraction and attachment your own. Who has such yearning for God? Make an effort. Only when you yearn for God, will you realize Him."

Volume I, II, VI : 27 Oct., 1882

(iv) Childlike faith

"One attains God when one develops intense love for Him. A lot of yearning is necessary. When one has great yearning, the whole mind goes to Him.

"There was a girl who became a widow at a very early age. She had never seen her husband's face. Seeing the husbands of other girls, she asked her father one day, 'Father, where is my husband?' Her father replied, 'Govinda is your husband. If you call Him, you will see Him.' Hearing this, the girl went into her room and, shutting the door, she began to cry and call out, 'Govinda! Please come. Let me see you. Why

don't you come?' Hearing the cries of the little girl, Bhagavan could not hold Himself back – He appeared before the girl.

"A childlike faith is needed! Such as the yearning of a child to see its mother. Such longing heralds the dawn. It is followed by sunrise. One sees the Lord after such intense longing.

"Listen to the story of the boy Jatila. To get to school, he had to go on horseback through a forest. On the way, he would feel frightened. When he told his mother about it, she said: Why fear? You should call out, 'Madhusudana.' The boy asked, 'Who is Madhusudana?' The mother replied, 'Madhusudana is your elder brother.' After that, when he felt afraid going through the forest alone, he cried out, 'Brother Madhusudana.' When there was no reply, he called out, 'Where are you, brother Madhusudana? Please come, I am so afraid!' Bhagavan then could not hold Himself back. He came and said, 'Here I am. What is there to fear?' And he accompanied the boy to the passage leading to the school and said to Jatila, 'I will come whenever you call Me. Don't be afraid.' Such childlike faith! Such yearning!

"A brahmin used to worship Bhagavan daily in his house. One day he had to go out on business. Before going he said to his young son, 'Offer food to Bhagavan today. The deity must be fed.' The boy did so. But Bhagavan sat still – He would neither talk nor eat. Having waited for some time, the boy saw that Bhagavan did not move. He was very sure that He would come, take his seat on his asana, and eat his meal. The boy said again and again, 'Bhagavan, please come and eat. It is already very late. I cannot be here much longer.' Bhagavan, however, did not say anything. The boy began to cry, saying, 'Lord, my father asked me to feed you. Why don't you come? Why don't you eat here?' He cried yearningly for

some time. Then he saw Bhagavan come smiling to take His asana (seat) and eat the meal. After serving Him, the boy went out of the shrine. The members of his family said, 'You have fed the Lord. Bring the offered food downstairs.' The boy said, 'Yes, yes. I have fed Him and Bhagavan has eaten everything.' They said, 'What are you saying?' The boy said simply, 'Why, Bhagavan has eaten the food!' They all went to the shrine and were speechless with wonder!"

Volume II:XII:II, 14 December 1883

2. GOD-REALIZATION AFTER GIVING UP THE PACIFIER

Arbitration, leadership, desire to build hospitals and dispensaries, desire to have fame and learning – all these mark the early stages of life – God-realization comes after giving up the pacifier.

(Shri Ramakrishna to Ishan): "What are you doing as the leader, arbitrator and such things? I hear that they select you as their arbitrator to settle their disputes and quarrels. You have been doing this for a long time. Let them who care to do it, do it. Now give more and more of your mind to God's lotus feet. They say, 'Ravana died in Lanka while Behula wept her heart out!'

"The same was said by Sambhu. He said, 'I will found hospitals and dispensaries.' He was a devotee. So I said to him, 'Will you ask Bhagavan for hospitals and dispensaries when you have His vision?'

"Keshab Sen asked me, 'Why can't I see the Lord?' I replied, 'You are busy with name and fame, scholarship and so on. That's why you don't see Him.' As long as the infant continues to suck on the pacifier, the mother does not come to him. After a while the infant throws away the pacifier and

cries aloud. The mother then takes down the rice pot from the fire and comes to it.

"You are engaged in arbitration. The Mother says to Herself, 'My son is fine as a leader. Let him enjoy himself.

''All this time Ishan has been holding Thakur's feet. He says humbly to him, still holding his feet, "It is not that I have been doing all this willfully."

Volume II.XIX.V : 11 October 1884

3. SIGNS OF GOD REALIZATION

(i) Vision of God when spiritual current rises

Shri Ramakrishna says, "In a high spiritual state,[1] breathing stops." He further says, "When Arjuna aimed at his target, his sight was fixed solely on the eye of the fish. He didn't see anything else. He didn't see any other part of the fish but the eye. In such a state, breathing stops and a person experiences retention of breath.

"There is another sign of God-vision: The spiritual current[2] from within rushes up toward the brain. At that time, if you attain samadhi, you realize God."

I.VIII.IV : 26 November 1883

(ii) One becomes like a child
like an unclean spirit
like an insentient being, or
like a madman.

Shri Ramakrishna: "There are signs of God-vision. According to Shrimad Bhaagavata, there are four signs of God-vision.

1 Bhaav
2 Mahaavaayu

One becomes like a child, like an unclean spirit,[1] like an insentient being, or like a madman.

"A person who has seen God develops the temperament of a child. He goes beyond the three gunas.[2] He does not become bound by any of them. He seems to make no distinction between purity and impurity – thus he is like an unclean spirit. And then like a madman he sometimes laughs, sometimes weeps. At one time he may dress himself like a gentleman, but soon after he may strip himself naked and begin to wander around with his dhoti under his arm. He seems to act like a mad man. Then again he may sit quietly at one place like an insentient being – an inert, lifeless, material body."

Devotee: "Does one get rid of the ego totally after the vision of God?"

Shri Ramakrishna: "Sometimes God completely erases one's ego, as in the state of samadhi. But generally the person retains a trace of ego. There is no harm in this ego. It's like the ego of a child. A five-year-old child says, 'I, I,' but that ego doesn't harm anybody.

"Iron becomes gold by touching the philosopher's stone. An iron sword becomes a sword of gold. It keeps the shape of a sword, but can't hurt anybody. You can't cut or kill with a sword made of gold."

I.X.V : 15 June 1884

Signs of a householder jnani – signs of God-realization – free in this very life.[3]

---

1 Pishaach
2 The three qualitities of sattva, rajas, and tamas
3 Jeevanmukta

Trailokya: "What are the signs of a householder's having attained knowledge of God?"

Shri Ramakrishna: "Tears flow from his eyes, and the hair on his body stand on end at the name of God. No sooner does he hear the sweet name of God than the hair on his body stand on end and a stream of tears flows from the eyes. ….

"The signs of God-realization are that a man becomes like a dry coconut – he is rid of identification with the body. Pleasure and pain of the body are no longer his concern. He does not seek comforts for the body. He roams about as one liberated in this very life.[1]

"When you see tears begin to flow and the hair on the body stand on end at the very name of God, know that attachment to 'lust and greed' has disappeared and that one has realized God. If a matchstick is dry, strike it just once, and it will light. If it is wet, you may strike it fifty times, but it won't ignite. You've just wasted the wooden sticks. If your mind is immersed in the liquid of worldly pleasures and is wet with 'lust and greed,' inspiration for God-consciousness will not arise. You may try a thousand times, but all your efforts will be in vain. It is only when the liquid of attachment to worldly pleasures dries up that there is instantaneous inspiration for God."

I.XII.V : 19 October 1884

— Nitin Nanda

3

God Realization —the Aim of Life

Extracts from **'Kathamrita-I'**[1]

These extracts throw some light on :

- Aim of life,
- Transitory nature of material objects,
- Household life and steps required to attain Lord
- Situation of worldly man,
- Ego— the root cause of separation from Lord,
- Prema Bhakati needed to attain Lord.

Aim of Life:

Shri Ramakrishna— "Having been born as a man, we can easily develop devotion at His lotus feet.[2]

Shri Ramakrishna— The Lord alone is real, eternal. All else is unreal, transitory, lasting just a couple of days. One must realize this and develop love for the Lord. Attraction for the Lord – love for Him. The *gopis* had such an attraction for Krishna.[3]

Transitory Nature of Material Objects:

Shri Ramakrishna— "There are people who are proud of

1 Published by Sh. Ma. Trust, first edition, 2001.
2 I. III. V. p. 111, Oct. 28, 1882
3 I. II. VI. p. 85, Oct. 27, 1882

riches, wealth, possessions, property, honour, rank and so on. These last only for a few days; nothing accompanies one at death. A song goes like this:

> O my mind, just think it over.
> Nobody really belongs to anyone in the world.
> There is mere illusion in the world.
>
> Don't forget the *Dakshina*
> (Bestower of happiness and bliss)
> Mother Kali by getting ensnared in Her Own maya.
>
> Just think it over.
> Will they accompany
> you for whom you are dying?
>
> This beloved wife of yours
> would rebuke you saying:
> 'It brings harm if dead revisits.'
>
> It is just for two or three days
> that people will call you as the lord,
> the master.
>
> They will cease to call you
> the master when the Master in the
> form of death shall arrive.[1]

Shri Ramakrishna— One must chant without ceasing the name of the Lord and His glories. And keep company of the holy – one must frequently go to God's *bhaktas*(devotees), or sadhus. One's mind does not fix itself on the Lord while living night and day in the midst of worldly activities and family life. Hence, one must go into solitude now and then to meditate on God. In the first stage it is very hard to fix the mind on the Lord unless one frequently goes into solitude.

By giving your mind to God in solitude, you gain *jṅana*

---

1 I. VIII. IV. p. 202-3, Nov. 26, 1883

(spiritual wisdom), *vairagya* (dispassion) and *bhakti*. But if you give the same mind to the world, it becomes vulgar. In the world there is nothing but the thought of 'woman and gold'.

''....Woman and gold'' are transitory; the Lord is the only reality. What does money give? It gives us rice and daal, clothes and a place to live in – thus far, no further. But it does not help attain *Bhagavan*(Lord). So money cannot be the end of life.[1]

Household Life and Steps Required to Attain Lord

Fix Your Mind on the Lord

Shri Ramakrishna *(to a Bhramo devotee)*— "There is nothing wrong in living as a householder as you are. Even so, you have to fix your mind on the Lord. Otherwise, it won't do. Do your work with one hand and hold the Lord with the other. When you finish your work, you will hold God with both the hands."

Faith in the name of the Lord

Shri Ramakrishna— "It is the mind that binds and it is the mind that liberates. I am a free soul; I may live in the household or in the forest; there is no bondage for me. I am the child of the Lord, the son of the king of kings; who will bind me then? When bitten by a snake, if you say loudly, 'There is no poison in it,' you are rid of the venom. In the same way if you say emphatically, 'I am not bound; I am free,' you become like

1 I. I. V. p. 37-38, 40; Feb., 1882

that. You become liberated.

There should be such faith in the name of the Lord, 'I have chanted His name, shall I be a sinner still? What sin for me! What bondage for me!

Krishna Kishore is a pious Hindu, a Brahmin who worships the Lord with single-minded devotion. Once he went to Vrindavan. One day while roaming about, he felt thirsty. He went to a well where he saw a man standing. He said to him, ''Brother, will you please give me a pot of water? Of what caste are you?''

The man replied, ''Pandit ji, I belong to a low caste – a cobbler,''

Krishna Kishore said, ''You say 'Shiva' and now draw water for me."

"By chanting the name of Bhagavan, the body and mind of man become pure."

Thakur overwhelmed with love; sings the power of God's Name.

Mother, If I die with the name of Durga on my lips,

I shall see, O Shankari, how You shall not redeem me?[1]

Situation of Worldly Man

"The bound creatures, the worldly men, don't get awareness by any means. They suffer so much misery, so many trials, and so many sorrows; even then they don't get awakening.

"The camel likes thorny bushes but the more it eats, the more it bleeds from its face. Even so, it continues to eat the

1 I. II. VI. p. 80-82, Oct. 27, 1882

same thorny bush and does not leave it.

The worldly man suffers so much agony, so much sorrow, yet he reverts back to his old self quite soon.
Perhaps his wife has died or she has proved faithless to him, yet he marries again.
Perhaps he has lost his son and suffered so much of the sorrow, yet he forgets all this in a few days. The mother of this boy, who was beside herself with grief, ties up her hair again and bedecks herself with jewellery…."

"At times, their state can be likened to that of the snake trying to swallow the mole. The snake cannot swallow the mole, nor can it give it up. The bound soul may have realized that there is no substance in the world – that it is like a hog plum that has nothing but stone and skin – yet he cannot give it up. Even though he cannot turn his mind towards the Lord."[1]

Ego— the root Cause of Separation from Lord

Shri Ramakrishna— "The very ego of man is *maya*. This egotism has veiled everything. 'All trouble ceases when the I-ness dies.' If by the grace of the Lord a man realizes, 'I am not the doer,' he becomes a *jivanmukta* (liberated in this very life). He has nothing to fear then.

"The maya or the I-ness is like a cloud. The sun becomes invisible even if there is a patch of cloud. As soon as the cloud passes away, one can see the sun. If by the grace of the Guru the feeling of I-ness vanishes, one realizes the Lord.

....

"The jiva is a form of Sachchidananda, but because of

1 I. IV. II. p. 125-27, Dec. 14, 1882

maya, or ego it is covered with various *upadhis* (adjuncts) and it has forgotten its own real Self."[1]

Prema Bhakti/Raga Bhakti Needed to Attain Lord

Shri Ramakrishna – "If 'I' does not go at all, let the rascal remain as the 'servant-I'. O, Lord! You are my Master, I am your servant – live with this attitude. 'I am the servant,' 'I am the *bhakta*' – there is no harm in this kind of I-ness. Sweetmeat causes acidity in the stomach. But sugar candy is not counted among sweetmeats.

"….In the age of Kali life depends on food. The conviction that I am the body, the feeling of I-ness, does not disappear. So, the path of Bhakti Yoga is enjoined for the age of Kali. Bhakti Yoga is an easy path. If you sing His names and glories, and pray to Him longingly from the core of your heart, you will attain Bhagavan – there is no doubt about it."[2]

Shri Ramakrishna— "Bhakti alone does not enable you to realize the Lord. Unless you have *prema*bhakti (loving devotion), you cannot attain the Lord. The *raga* bhakti is another name of *prema* bhakti. Without *prema*, without love, you cannot realize Bhagavan. Without love for the Lord, you cannot attain Him.

So long as you have not acquired love for God, your bhakti is unripe. When you have acquired love for God, yours is the ripe bhakti. He who has unripe bhakti cannot internalize spiritual instructions and the talk on the Lord. One can see God only through bhakti but it must be ripe bhakti, *prema* bhakti, or *raga* bhakti. Only after gaining that bhakti, one

1 I. IV. VI. p. 140, Dec. 14, 1882
2 I. IV. VI. p. 136, Dec. 14, 1882

loves God as the son loves his mother, or the mother loves her child, or the wife her husband. When you have such a love, such a raga bhakti, you don't have that attraction of maya for your wife, son and dear relatives. You only retain kindness for them. The world then appears a foreign land – a land of duty alone.

Without His grace you cannot see Him. Is it easy to gain his grace? You will have to get rid of your egoism completely. When you have the feeling that you are the doer, you cannot see the Lord. He who himself has become the doer, the Lord does not appear easily in his heart.

One should pray to the Lord, 'Thakur, be kind enough to bring the light of jṅana once on Your face so that I may see You.'[1]

Shri Ramakrishna *(to Vijay)*— On developing ecstatic love for the Lord *karmas* (activities) fall off automatically. Let those act (work) whom Lord makes them to work. Your time has come now. Giving up everything you should say: 'O my mind, may you behold Her, may I behold Her and none else!'

"You have taken refuge in Bhagavan. Now eschew the feeling of shame, fear and so on. Giving up the idea that if you dance while singing the name of Hari what will people say about you.

"To attain *prema* (Love) is a far cry. Chaitanya Deva attained it. When you have *prema* for the Lord, you forget the external objects, you forget the world. You forget even your own body which is so dear to you."

---

1 I. IV. VII. p. 144, 46, 47, Dec. 14, 1882

Saying so, Shri Ramakrishna begins to sing again:

When will such a day come?

When streams of tears shall flow down my eyes uttering Hari, Hari (when will such a day come?)

When I am able to rid myself of worldly desires (when will such a day come?)

When shall my hair stand on end (when will such a day come?)[1]

—Sunil Bansal

1 I. VIII. III. p. 199, 201. Nov. 26, 1883

माँ सारदा

- जन्म : 22 दिसम्बर, सन् 1853 ईसवी।
- स्थान : जयराम बाटी (कामारपुकुर से 4 मील और दक्षिणेश्वर से 60 मील की दूरी पर)।
- माता–पिता : श्रीमती श्यामा सुन्दरी और श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय।
- भाई–बहन : चार छोटे भाइयों की बहन।
- विवाह : 6–7 वर्ष की अल्पायु में सन् 1859 में 22–23 वर्षीय ठाकुर रामकृष्ण के साथ।
- दक्षिणेश्वर–वास : प्रथम बार सन् 1872 में गंगा–स्नान के लिए जा रहे यात्री–दल के साथ 60 मील पैदल चल कर दक्षिणेश्वर पहुँचीं। बाद में वे आवश्यकतानुसार कभी दक्षिणेश्वर, कभी जयराम बाटी रहती रहीं। ठाकुर के देहावसान के पश्चात् वे प्रायः कोलकता रहा करतीं।
- महासमाधि : कोलकता में 21 जुलाई, सन् 1920 ईसवी को रात्रि डेढ़ बजे।

■

4

The Goal of Human Life

as shown by

Ma Sarada

When we think about goal of life or about the ambition of life, we generally think of becoming doctor, or engineer, or scientist, or economist, or to become rich, to have a lucrative job, comfortable life, etc. so that we can be happy. But can we really achieve permanent happiness and peace through this?

In fact endless desires and longing for more and more worldly comforts, keep us haunting and we always remain stressed and dissatisfied. In the words of Shri Sarada Devi, the Holy Mother, **"The happiness of this world is transitory. The less you become attached to the world, the more you enjoy peace of mind.**…**Today they seem to be the be-all and end-all of life, and tomorrow they vanish. Your real tie is with God."** She further said, **"Desire alone is the root cause of suffering".** Indeed our endeavour should be to restrict our desires and to focus on the ultimate goal of life— to reach a state of mind that enjoys eternal peace and happiness.

How to attain this peace and happiness is demonstrated by the Holy Mother through her day-to-day acts.

Holy Mother's simple, austere, and pious life is an example of ideal householder's life. She led perfect role of

a mother, wife, spiritual teacher, and an ascetic. The reminiscences of Holy Mother by several of her disciples and devotees give us opportunity to know her intimately and to benefit ourselves to lead a blissful life.

Pious Parents

Holy Mother Shri Sarada Devi was born on December 22, 1853 in an obscure village named Jayarambati (Distt. Bankura, West Bengal), adjacent to the village Kamarpukur, the birth place of Sri Ramakrishna. Her parents Shri Ramchandra Mukhopadhyay and Smt. Shyamasundari Devi were poor but known for their inborn piety, charity, devotion for truth, and profound sympathy for the poor and helpless.

The holy mother imbibed all these virtues in her life.

Marriage

According to the custom then prevalent in India, she was married at an early age of around six to Shri Ramakrishna, who was about seventeen years elder to her. After marriage she continued to live with her parents, while Shri Ramakrishna lived a God-intoxicated life at Dakshineshwar. She grew up in a simple village-atmosphere helping her mother in various household works and spent a modest life. She learnt Bengali alphabets in the house and managed to read.

To Dakshineshwar

At the age of eighteen she travelled to Dakshineshwar along with her father, about 60 miles from Jayarambati, on foot to meet her husband. By then Shri Ramakrishna had attained a state of God realization – visualized God in all beings. He received her cordially and took personal care to teach her how to lead a spiritual life while discharging all her household

duties. She lived as divine consort of Shri Ramakrishna and served him with all divinity.

Universal Motherhood Awakened

In the year 1872 Shri Ramakrishna worshipped her as Divine Mother in the night of Phalaharini Kalipuja and awakened her latent Universal Motherhood. Shri Ramakrishna revealed her as an incarnation of Goddess Sarasvati who came to remove ignorance of the suffering humanity. He once said: **'She is Sarada, Saraswati. She has come to impart knowledge. …She is full of the rarest wisdom. Is she of the common run? She is my Shakti.'**

Demonstrated God-realised State of Mind— Peace and Happiness Throughout Her Life

In Dakshineshwar she lived in 'Nahabat'. It was a very small octagonal-shaped room with hardly any amenities; even this small room was overcrowded with household material and female devotees. She would complete her bath in the river Ganga in the early morning at 3 AM, well before others were awake and thereafter remained confined to her little room till night. She toiled hard throughout the day taking care of Shri Ramakrishna and serving to the ever increasing number of visiting disciples and devotees. She endured every difficulty silently but happily as if always in peace. That is why when she remembered those days later, said she, **"I felt as if a pitcher full of bliss residing within myself."**

Served Her Parental Family as if Serving God

After Shri Ramakrishna's *Mahasamadhi* in the year 1886, when she moved to Jayarambati, she lived in her parental

house amongst her relatives.

One of her sister-in-law (Surabala, called as 'Paglimami') was widow and lunatic. Holy Mother took upon her the responsibility of bringing up her daughter Radhu. Radhu was of extremely ill-tempered, unreasonable and of irritating nature, and was a continuous source of trouble. Besides, Nalini and Maku, the daughters of Holy Mother's brother Prasanna Kumar and his first wife, along with Maku's son also used to stay with Holy Mother. The selfishness of the brothers, the mutual jealousy of the nieces, Nalini's mania for ceremonial purity, the perversity of Radhu and the insanity of Radhu's mother produced an intolerable domestic atmosphere. But Holy Mother handled every thing with her matchless patience and forbearance.

Even in such circumstances Holy Mother was seen always in peace.

Once Radhu became very angry and threw a brinjal with a great force at Holy Mother. It hit her on back and she was in severe pain. Holy Mother, in response, prayed to Shri Ramakrishna to forgive Radhu for her misdeed as she was senseless.

Such was her exemplary quality of **Forbearance** and **Forgiveness**. In the words of Holy Mother, **"Forbearance is a great virtue; there is no other virtue like it."**

A Guiding Force for All

After the Mahasamadhi of Shri Ramakrishna all of his disciples – sanyasins as well as householders – were in distress. They always flocked around Holy Mother to get solace and guidance. Number of them used to visit Jayarambati on and off for seeking her blessings, for initiation, or for any other matter.

Foodstuffs to be served there were always in scares. Holy Mother, even with her sick health, used to go around the village to collect vegetables, milk, etc. to cook food for them. She did all this silently and patiently in addition to her daily routine work. At one point of time her health became so poor that she instructed all not to visit her at Jayarambati.

Even then there was no respite – they were unstoppable. People used to come on foot even from a long distance and she used to take care of them lovingly.

Against Wastage

Holy Mother was against wasting anything, not even a small thread. Once Shri Ramakrishna gave her some jute to make a '*Shika*' [a reticulated bag made of strings, kept hanging in the room to store foodstuffs]; it was meant for storing *prasad* for his disciples. After making the 'Shika', instead of throwing out the waste, she made a pillow out of that for her use.

Holy Mother was very particular about cleanliness and tidiness in her household activities. She wanted that one leading a householder's life should perform all work, small or big alike, with equal importance, and should pay respect to every article in the house. As recorded by Swami Ishanananda, "One day at about nine or ten, the Holy Mother was rubbing oil on her body. An attendant just then swept the place and threw the broom on one side. The Holy Mother noticed it and said, 'What is that? The job is over and straightway you threw it off so carelessly! It will take just as little time to keep it properly as it takes to throw it away. Whatever you care for, will care for you also."[1]

---

1 The Gospel of the Holy Mother Shri Sarada Devi recorded by HER devotee-children, Page 756

How carring and loving concern of Holy Mother even for the inanimate things!

Mother of All

She treated everyone equally with **compassion** whether it was Swami Saradananda or dacoit Amjad. She said, "**I am the mother of the wicked, as I am the mother of the virtuous. Whenever you are in distress, only speak this to yourself, 'I have a mother'**." Once her niece Nalini was serving food to Amjad and Holy Mother was sitting nearby. She was almost throwing the eatables on his plate from a distance. Holy Mother immediately admonished her for such a disregard. Mother used to say, **'Look, my children are all alike to me. I can't treat one differently from the other'**."[1]

What an example of seeing God in all in her day-to-day life!

Conservative as well as Liberal

Holy Mother was very conservative in practicing established customs herself but at the same time she behaved unprejudiced and liberal for others. When Sister Nivedita (then Ms. Margaret Elizabeth Noble) with Mrs. Sarah Ole Bull and Ms. Josephine Macleod went to meet Holy Mother on 17th March, 1898, she welcomed them cordially in her room at Bagbazar and partook *prasaad* together.[2] In the then orthodox society of Bengal it was unimaginable.

Swamiji delightedly mentioned the incident in his March 1898's letter to his brother-disciple Swami Ramakrishnananda, 'Shri (Holy) Mother is here, and the

1 Reminiscences of the Holy Mother by Sudhir Chandra Samui. This article was originally published in Vedanta Kesari, November, 2002 edition.

2 Taken from *Sri Sri Mayer Padaprante* (Bengali), Vol. 2, Fourth Print, Page 235.

European and American ladies went the other day to see her, and what do you think, Mother ate with them even there! Is not that grand?'[1]

As Sanghajanani

Swami Vivekananda on his return from USA founded Ramakrishna Mission on 1st May, 1897. Holy Mother was the cohesive force behind formation of the Ramakrishna Order. She is regarded as *Sanghajanani* (Mother of the Order). Swami Vivekananda and other disciples of Shri Ramakrishna sought her guidance in all matters of importance. Her words were taken as ultimate. Once a brahmachari did some wrong and being afraid of expulsion he immediately left for Jayarambati. She heard everything and wrote a letter to Swami Shivananda, the then Predsident of Ramakrishna Mission, requesting him not to take action against the bramhachari (junior Nagen). She kept him with her till reply to her letter reached Jayrambati. When junior Nagen went back to Belur, Swami Shivananda held him fast in an embrace and said, 'How now, my boy! You went to High Court to complain against me?'

But when one of her sannyasin-disciples was repentant after violating the sacred vow of sannyasa, the Mother told him, 'I have pardoned your ill-doings. But no *sannyasin* who breaches the vow of sannyasa can remain in the *Sangha,* no matter how much penance he performs.'

She thus safeguarded and sustained the ideals of the Order and whenever necessary, she provided infalliable directions to the stalwart monks of the Order.[2]

---

1 The Complete Works of Swami Vivekananda, Thirteenth Impression, December 2002, Vol. 8, Page 448.

2 The Universal Mother, Page 114-115.

Wisdom and Leadership Quality

Once during Independence Movement, British ruler Lord Carmichael, Governor of Bengal, had accused the Mission of carrying out rebellious activities. Swami Brahmananda, President of Ramakrishna Mission was away. Holy Mother sent Swami Saradananda to visit the Governor and to explain him the activities of the Math in detail. The Governor got convinced and thus imminent danger could be overcome. Such was her wisdom and leadership quality!

Truth is the first and also the last step towards self realisation or God realisation. Truth is a big fountain of power. It was the power of truth the Holy Mother exercised and the British Governor got convinced and freed the Mission.

Encouraged Welfare Activities for the Poor

She would encourage her devotees to carry out welfare activities to the poor and distressed. While visiting Ramakrishna Mission Home of Service in 1912 in Varanasi, she was very happy to see the monks caring all types of patients, and donated Rs 10/- for the development of this hospital. That currency note is still preserved as a holy treasure at the Center.

Through this Holy Mother made it clear that the purpose of self realisation is the service of mankind— nay of all the universe.

Holy Mother Made the Whole World Her Own

Mother's last words were "… Learn to make whole world your own. No one is stranger, my child; this whole world is your own.' The whole world is one family — *Vasudhaiva kutumbakam* Holy Mother's message is for the universal love,

the love which elevates one's mind and leads to the path of spirituality. Hatred separates people, Love brings together.

Whoever came to Mother whether man or woman, good or bad, rich or poor, educated or ignorant, moral or immoral, became her child. She identified with all rejoicing in their happiness and weeping at their sufferings and misfortunes. She literally made the whole world her own. No one was stranger to her. All were her children.

Why not! Seeing God in all is God realisation or self realisation.

Ideal Role Model for All

Life of the Holy Mother is the ideal role model for all of us – whether a householder or, a *sanyasin*; she was like a North Star. She was calm, forgiving, loving, dignified and wise. She worshipped God in all beings. Her life was dedicated entirely to the welfare of others. She was humble whether anybody worshipped her or insulted her. She had not the least trace of egoism.
Ego and self realisation can never go together.

The life of Holy Mother is the synthesis of all virtues. No worldly matter or any adverse situation could disturb her peace of mind and she lived a contended life.

The aim of her life was – in her own words, **'The aim of life is to realize God and remain immersed in contemplation of Him,' which she herself demonstrated in her day-to-day deeds, big or small throughout her life.**

—Ashish Dasgupta

5

हे माँ!
हमारे मन को शुद्ध कर दो

बात उस समय की है जब हम पति-पत्नी देहली में रहते थे। जब भी कलकत्ता (कोलकाता) जाना होता, तीन दिन बेलुड़ मठ में रहते। ऐसे ही एक अवसर पर बड़ी दीदी (मेरे पति की बड़ी बहन) भी हमारे साथ थीं। वे भी हमारे साथ बेलुड़ मठ रहीं।

एक दिन शाम के समय हम माँ गंगा के किनारे उस ओर टहल रहे थे जहाँ श्री श्रीमाँ सारदा का मन्दिर है। उस समय वहाँ अनेक वरिष्ठ साधु भ्रमण कर रहे होते हैं। कुछ जन माँ के मन्दिर के बरामदे में बैठ कर जप-ध्यान भी करते हैं।

दीदी की इच्छा हुई समोसे खाने की। उनकी इच्छा का मान रखते हुए उनके भैया— मेरे पति गए और समोसे ले आए। हमने एक-एक समोसा हाथ में लिया। दीदी बोलीं— चलो, गेट की ओर चलते हैं। गेट के बाहर जाकर ही खाना उचित होगा। हम गेट की ओर चल पड़े। तभी माँ के मन्दिर में बैठे हुए एक वरिष्ठ साधु (स्वामी अच्युतानन्दजी महाराज) ने हाथ के इशारे से हमें बुलाया। हमने झट से हाथ का समोसा पीछे छुपाया और उधर चल पड़ीं। समीप पहुँच कर हमने सिर झुका कर स्वामीजी को प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुए स्वामीजी ने हमसे पूछा—

''माँ को प्रणाम किया?''

हमने कहा— ''हाँ महाराज।''

स्वामीजी ने पूछा— क्या माँगा माँ से?— नयी-नयी साड़ियाँ या गहने?

मैंने कहा— नहीं महाराज। आपसे हमने यह तो सीख ही लिया है कि माँ से क्या माँगना है।

स्वामी जी बोले— हाँ, माँ से कहना चाहिए,

''हे माँ! मुझे निर्वासना कर दो, मेरी सारी कामनाएँ, वासनाएँ दूर कर दो माँ। यही एकमात्र माँगना होता है माँ से।''

इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने हमें और भी अनेक उपदेश दिए।

हम सब जानते ही हैं कि मनुष्य-जीवन का उद्देश्य क्या है। इसके लिए हम सबके समक्ष ठाकुर और माँ हैं जीवन्त उदाहरण।

ठाकुर ने तो कहा है— ईश्वर का केवल दर्शन नहीं, उनसे बातें करना भी सम्भव है। पर इसके लिए हमें त्रिगुणातीत होना होगा क्योंकि ये तीनों गुण हैं चोर। सत्वगुण हमें सही रास्ता तो दिखा सकता है पर अन्ततः हमें अपने उद्देश्य तक नहीं पहुँचा सकता। वहाँ पहुँचाएगा कौन? ठाकुर गाते थे—

1. ''ओई जे देखा जाय आनन्दधाम
   ....
2. चल गुरु दुजन जाई, आमार एकला जेते भय करे।
   ....''

ईश्वर तक ले जाने के लिए हमें गुरु की परम आवश्यकता है। वे यदि हमारा हाथ पकड़कर हमें ले जाएँ तो हमारे पाँव सही मार्ग पर ही पड़ेंगे। हम तब बेचाल नहीं होंगे।

सत्वगुण है सीढ़ी की अन्तिम धाप, इसके बाद ही है छत। छत माने goal, उद्देश्य अर्थात् ईश्वर-लाभ, ईश्वर-प्राप्ति।

यदि हम सांसारिक व वैषयिक सुख छोड़कर ज़रा विचार करें कि माँ ने, ठाकुर ने क्या कहा है, उन्होंने क्या किया है और फिर हम स्वयं उस

मार्ग पर चलने का प्रयास करें तो वे हमें अवश्य मार्ग दिखलाएँगे।

हमारा सौभाग्य है कि हमें मनुष्य-जन्म मिला है। हम विचार कर सकते हैं कि क्या अच्छा है, क्या बुरा। पर हम महामाया में फँसकर भूल गए कि हम तो 'अमृत के पुत्र' हैं। हम भूल गए कि एकमात्र मनुष्य-जन्म में ही हो सकता है ईश्वर-चिन्तन तथा ईश्वर-लाभ।

स्वामी तुरीयानन्द जी देखते थे— ''हाय! माया की कैसी तरंग! इसने तो सारी पृथ्वी को ढक लिया है।''

माँ तब खूब हँसती थीं। कहती थीं— ''दो भाई तुच्छ ज़मीन के लिए लड़ रहे हैं। देखो, यह है माया की शक्ति!''

श्री श्रीमाँ की जीवन-चर्या ही है अनुसरणीय। माँ ने कहा है— ''मैं सबकी माँ हूँ।''

एक भक्त ने माँ से पूछा— ''माँ, आपको मालूम है आप कौन हैं? आप कहाँ से आई हैं?''

उत्तर में माँ ने कहा था— ''हाँ, अचानक याद तो आता है कि मैं तो वैकुण्ठ में लक्ष्मी थी। पर माया फिर से सब भुला देती है। नहीं तो मैं यहाँ काम कैसे करूँगी? ठाकुर जो कार्य सौंप गए हैं, वह कैसे करूँगी?''

हम सबकी ऐकान्तिक प्रार्थना है— ''हे हमारी सर्वशक्तिमयी माँ! आप संकटहारिणी हैं, हमारी सर्वदा रक्षा करें ताकि हम माया की मोहिनी शक्ति में न फँस जाएँ। हे माँ! आप हमें सही मार्ग दिखाइए।''

प्रार्थना में बहुत शक्ति होती है। माँ ने कहा था— ''ऐकान्तिक प्रार्थना से हमारी समस्त मनोवाञ्छाएँ अवश्य पूर्ण होती हैं।''

हमारी माँ से प्रार्थना है— ''हे माँ! हमारे मन को शुद्ध कर दो ताकि

हम अपने अशान्त मन को शान्त कर सकें और अपने हृदय में आपका आसन बना सकें।''

इसके लिए, मन को शुद्ध करने के लिए, हमें स्वयं भी चेष्टा करनी होगी। चेष्टा के पश्चात् ही होता है कृपा-लाभ।

चेष्टा है— जप, ध्यान, तपस्या, सेवा आदि। इसी से मिलता है माँ का आशीर्वाद और होता है ईश्वर-ज्ञान, ईश्वर-लाभ, self-realisation और यही है हमारे जीवन का उद्देश्य।

— श्रीमती अनुराधा दासगुप्त

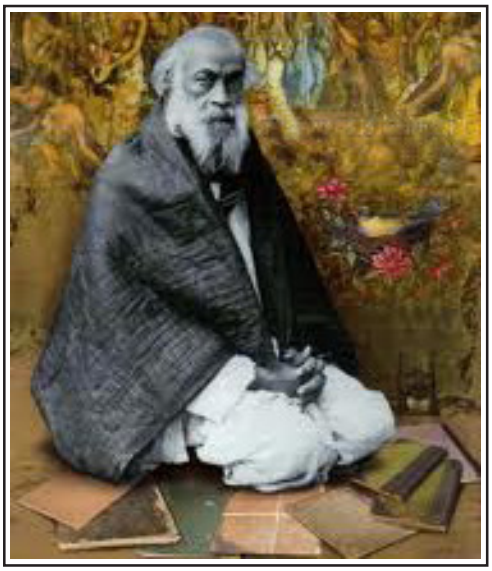

श्री म (मास्टर महाशय)

- पूरा नाम : श्री महेन्द्रनाथ गुप्त
- जन्म : शुक्रवार, नाग पञ्चमी, 31वाँ आषाढ़, 14 जुलाई, 1854 ईसवी।
- स्थान : कोलकता में शिमुलिया मोहल्ले की शिवनारायण दास लेन।
- माता–पिता : श्रीमती स्वर्णमयी देवी और श्री मधुसूदन गुप्त– वैद्य ब्राह्मण वंश।
- भाई–बहन : 4 भाइयों और 4 बहनों में तीसरी सन्तान।
- विवाह : सन् 1873 में श्रीमती निकुञ्ज देवी के साथ।
- शिक्षा :
  - सन् 1867 में आठवीं कक्षा से डायरी लेखन।
  - हेयर स्कूल से दसवीं की परीक्षा में द्वितीय स्थान।
  - गणित का एक पेपर न दे सकने पर भी एफ.ए. में 5वाँ स्थान।
  - सन् 1875 में प्रेज़िडैंसी कॉलेज से बी.ए. में तृतीय स्थान।
  - पूर्वी और पश्चिमी विद्याओं में निपुणता।
- गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस
- गुरु–लाभ : 26 फरवरी, सन् 1882 को रविवार के दिन।
- महासमाधि : शनिवार, 4 जून, सन् 1932 ईसवी को प्रातः 5.30 बजे।

■

6

मनुष्य-जीवन का उद्देश्य और श्री 'म'

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य श्री महेन्द्रनाथ गुप्त, मास्टर महाशय व श्री म 26 फरवरी, 1882 को ठाकुर से मिलने के दिन से ही ठाकुर की जो बातें उनके श्री मुख से सुनते, उन्हें स्मृति में संजोकर लाते और घर आकर डायरी में लिखते। ठाकुर के इह लीला संवरण तक— 16 अगस्त, 1886 तक— जितनी बार भी वे ठाकुर के पास गए, उस सबका समय, तिथि, वार सहित समस्त वर्णन वे संकेतों के रूप में डायरीबद्ध करते रहे।

बाद में डायरियों में लिखे इन्हीं संकेतों के आधार पर 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत' के पाँच भागों की रचना की श्री म ने।

इन श्री म को वेद-उपनिषद् आदि शास्त्र, पुराण, काव्य-शास्त्र, संस्कृत-नाटक, जैन और बौद्ध दर्शन, बाईबल, कुरान, और फिर इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि में पाण्डित्य पहले ही प्राप्त था। परन्तु दूसरी बार की भेंट में ही श्री श्रीठाकुर ने उन्हें समझा दिया था कि 'ईश्वर को जानने का नाम ही ज्ञान है और बाकी सब अज्ञान'। समस्त शास्त्रों के अपने पाण्डित्य में उन्हें अब असारता का बोध होने लगा। शास्त्रों का यह बौद्धिक पाण्डित्य जीवन से

हताश-निराश हो चुके श्री म की रक्षा तो नहीं कर पाया ना! और 27-28 वर्ष के श्री म घर से निकल ही पड़े थे देहत्याग-हेतु। सुयोग से दैव उन्हें ले गया ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास। प्रथम दर्शन में ही ठाकुर-दर्शन से, उनकी बातों से वे इतने प्रभावित कि बार-बार उनके दर्शनों की इच्छा होती। वे ठाकुर से मिलने बार-बार आते भी रहे। परिणामस्वरूप देह-त्याग का विचार फिलहाल उनके मन से जाता रहा। तो भी ठाकुर से मिलने के सात दिन बाद साहस करके उन्होंने कह ही दी ठाकुर से अपने मन की बात। श्री म के अपने शब्दों में—

''...साहस करके उनसे कह दिया इस संसार में तो न रहना ही भला है, इतनी यन्त्रणाओं के भीतर। अन्तर्यामी ठाकुर ने पहले से ही मेरे मन की बात समझ ली थी। उन्होंने भरोसा दिलाते हुए कहा,
'तेरी बला! भला तुम क्यों इस संसार से विदा लोगे? कहने ही से होता है क्या? तुम्हें तो गुरु-लाभ हुआ है।....' ''

(श्री म दर्शन-I, 1965, भूमिका)

सचमुच ही गुरु-लाभ हुआ था श्री म को। गुरु-लाभ नहीं, भगवान-लाभ। निरन्तर ठाकुर-संग का, ठाकुर की बातों का, बीच-बीच में ठाकुर के समाधि-दर्शन का श्री म पर इतना प्रभाव पड़ा कि उनकी हो गई ठाकुर में पूर्ण आस्था। उन्हें अपने जीवन का उद्देश्य स्पष्ट होने लगा था।

निरन्तर ठाकुर की बातों को जीवन में धारण/पालन करने से श्री म का हो गया था रूपान्तरण। श्री म से अब वे हो गए थे ऋषि श्री म। गृहस्थ श्री में अब हो गए थे गृहस्थ-संन्यासी श्री म। घर में रहकर सभी कर्त्तव्यों को निभाते हुए भी कैसे अनासक्त होकर रहा जा सकता है, कैसे सब समय ईश्वर के साथ संयुक्त होकर रहा जा सकता है, सब समझा दिया था ठाकुर ने उनको।

ठाकुर ने श्री म को समझा दिया था कि मन से त्यागी होने से विषय-बुद्धि खूब कम हो जाती है। उन्होंने श्री म को बताया था कि चैतन्य महादेव के गृही भक्तगण किस प्रकार संसार में अनासक्त भाव से रहते थे। ऐसी ही समस्त ठाकुर-वाणी को सुन-सुनकर श्री म को अपने जीवन की राह मिल

गई थी। उन्होंने ठाकुर को कसकर पकड़ लिया। अब उनके मुख में ठाकुर-कथा के अतिरिक्त और कोई बात रही ही नहीं। उनके एकमात्र श्रेय, काम्य, लभ्य, प्रतिपाद्य बन गए थे ठाकुर।

ठाकुर ही उनके परम पुरुषार्थ। कैसे ?— जैसे गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥ [गीता : 6.22]

अर्थात् ''जिसे प्राप्त करके उससे और अधिक दूसरा लाभ कुछ भी नहीं है, ऐसा मानता है और जिस अवस्था में स्थित रहते हुए वह (योगी) बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता।''

ठाकुर की देह चले जाने के पश्चात् अनेक ठाकुर-भक्त उनके पास नित्य आने लगे। उनके मन-प्राण को शीतल करती ठाकुर-वाणी श्री म के मुख से सदैव झरती झर-झर। वे वेद-उपनिषद्, पुराण, गीता, भागवत आदि शास्त्रों के साथ-साथ बौद्ध शास्त्र, बाईबल, कुरान आदि की भी व्याख्या करते ठाकुर-वाणी व उनके जीवन के संग मिलाकर। और इस सबसे आने वाले सभी भक्तों की प्रत्येक समस्या का समाधान भी वे करते।

जैसे श्री म को ठाकुर-रूप में हुआ था गुरु-लाभ, वैसे ही श्री म के अन्तरंग शिष्य स्वामी नित्यात्मानन्द (जगबन्धु महाराज) को हुआ था श्री म के रूप में गुरु-लाभ। श्री म दर्शन भाग-I की भूमिका में वे लिखते हैं—

''(श्री म के) दर्शन के कुछ दिन पहले से ही मेरे हृदय के भीतर से एक आकांक्षा हो रही थी, और निशि-दिन नीरव प्रार्थना— 'हे ईश्वर! मुझे एक ऐसा जन मिला दो जिसकी बुद्धि स्थिर और अविचलित हो। ... दैनन्दिन जीवन-पथ में जिसकी बुद्धि से चलूँ।' इस प्रकार के एकजन 'स्थितप्रज्ञ' के सन्धान का कारण था अपनी बुद्धि की दुर्बलता और अस्थिरता का अनुभव। ...ऐसी ही मनोवृत्ति की अराजकता के समय दर्शन और लाभ हुआ श्री म का। ...जिस दिन श्री म को देखा, उस दिन से ही समझ लिया था, भगवान ने मेरी प्रार्थना सुनकर ही श्री म को दिया है— 'श्री म कर्णधार'।

''...इस घटना के दिन से नित्य श्री म के पास जाने लग गया। उनकी बातें एकाग्रमन से सुनता और लिखता घर लौटकर। मन में होता इन बातों ने मेरे प्राण शीतल किए हैं, लिखकर रख लूँ, जब श्री म को नहीं पाऊँगा, तब इन्हीं बातों को पढ़कर शान्ति-लाभ करूँगा...''।

तो श्री म के ये अन्तरंग शिष्य स्वामी नित्यात्मानन्द भी श्री म मुख से सुनी समस्त वाणी को नित्यप्रति लिखने लगे अपने गुरु श्री म की ही न्यायीं डायरी में। पीछे श्री म का शरीर चले जाने के बाद अपनी इन्हीं डायरियों के आधार पर स्वामी नित्यात्मानन्द ने बंगला भाषा में 'श्री म दर्शन' नाम से 16 भागों का प्रकाशन किया। बाद में उनकी शिष्या श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा ये सभी भाग बंगला से हिन्दी में अनूदित हुए और इस हिन्दी-अनुवाद से उनके पति प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता जी ने 'M. the Apostle and the Evangelist' नाम से इनका अंग्रेजी में भी अनुवाद किया।*

श्री म ठाकुर-वाणी छोड़ और कुछ बोलते ही नहीं थे। उनका जीवन ही हो गया था ठाकुरमय। अत: श्री म दर्शन में एक तरह से ठाकुर-वाणी की ही व्याख्या है स्वयं श्री म द्वारा और है सभी शास्त्रों की व्याख्या ठाकुर की वाणी व उनके जीवन के आलोक में।

इस समय श्री म 'ब्राह्मधर्म' से पाठ कर रहे हैं—

> ''सूर्य अभी भी निकले नहीं। श्री म उपनिषद्-पाठ करते हैं— दक्षिणपूर्व कोण में मॉर्टन स्कूल की चार तल की छत पर बैठे हुए। जगबन्धु, विनय, छोटे अमूल्य, छोटे जितेन क्रमश: आकर बैठे। 'ब्राह्मधर्म' से वैदिक सुर में पढ़ते हैं—
>
> ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
> तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृध: कस्यस्विद्धनम्॥ ...ईशोपनिषद्, मन्त्र-I
>
> **श्री म** *(भक्तों के प्रति)*— प्रश्न हुआ है, संसार में किस प्रकार रहना होगा? जिसने प्रश्न किया है, उसको संसार के

* ये सभी पुस्तकें 'श्री म ट्रस्ट' (श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट) के पास उपलब्ध हैं।

> सम्बन्ध में कुछ अंश ज्ञान हुआ है— (वह) समझ गया है यह बड़ी मुश्किल का स्थान है। यहाँ पर मन सर्वदा नीचे भोग की तरफ ही जाता है और परिणाम होता है कष्ट। गुरु-मुख से सुना है ईश्वर सुखस्वरूप हैं। उनके दर्शन करके सुख की ही प्राप्ति होती है— जिस सुख के संग दु:ख जड़ित नहीं है वही सुख प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है। इन्हीं दो आकर्षणों में पड़कर श्रीगुरु की शरण ली है।''*

स्वयं श्री म संसार की ज्वाला से दग्धचित्त हो देहत्याग के निश्चय से घर से निकले थे। सुयोग, दैव उन्हें ले आया ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास। उन्हें मिल गए थे सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप श्रीरामकृष्ण गुरु रूप में। उन्हें यह तो बोध हो गया कि संसार में तो रहना ही होगा। अब प्रश्न था यहाँ (संसार में) कैसे रहें जिससे सांसारिक ताप न सताए। अत: वे अपने गुरु श्रीरामकृष्ण से पूछते हैं—

''संसार में किस प्रकार रहना होगा?''

प्रश्न श्री म ने ही किया है। क्यों किया है?— अभी तक के अपने अनुभव से वे समझे हैं—
'संसार बड़ी मुश्किल का स्थान है...' और गुरु-मुख से वे सुन रहे हैं—
'...ईश्वर सुख-स्वरूप हैं'
अर्थात् सुख संसार में नहीं, ईश्वर में है। प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है। ऐसा सुख जिसमें दु:ख न हो और ऐसा सुख मिलता है ईश्वर-दर्शन से ही। यही ईश्वर-दर्शन ही है मनुष्य-जीवन का उद्देश्य।

अब प्रश्न होता है

> किस प्रकार चलने से ईश्वर-दर्शन हो, कभी समाप्त न होने वाला सुख-लाभ हो।
> ईशोपनिषद् अथवा ईशावास्य उपनिषद् के उपर्युक्त मन्त्र की व्याख्या करते हुए श्री म कह रहे हैं— ''जभी प्रश्न हुआ किस

* श्री म दर्शन भाग-5, 1986 पृ० 83

प्रकार चलने से उद्देश्य सिद्ध हो, ईश्वर-दर्शन हो, चिरसुख-लाभ हो। ऋषि ने उत्तर दिया, 'ईशा वास्यम्' अर्थात् ईश्वर-दृष्टि करो संसार में। 'इदं सर्वं' इत्यादि का अर्थ है— संसार अनित्य, दो दिन का। और फिर संसार मन को विषय में बद्ध करता है। 'ईश्वर सत्य, जगत अनित्य', यही स्थिर हुआ। अनित्य संसार में अर्थात् माया के इलाके में रहते हुए किस प्रकार मायातीत हुआ जाए— कैसे उनका दर्शन हो? जभी उपाय बताते हैं,

'तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'—

अर्थात् यहाँ का भोग मत लो। वैसा हो जाए, तो कर सकेगा। संसार कामिनी-काञ्चनमय है। यहाँ का भोग न ले तो बड़ी वस्तु-लाभ कर सकता है— भूमा, ब्रह्मानन्द।

अनासक्त होकर रहना। ठाकुर ने बताया है, मन से त्याग करोगे। ....[1] यह सब कैसे सम्भव? उपनिषद् के ऋषि कह रहे हैं—

'तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृधः कस्यस्वित् धनम्'

अर्थात् यहाँ का माने संसार का भोग मत लो।

संसार है कामिनी-काञ्चनमय। दो ही वस्तुएँ हैं संसार में— एक कामिनी अर्थात् समस्त कामनाएँ, वासनाएँ, इच्छाएँ जिन्हें व्यक्ति भोग लेना चाहता है और दूसरा है काञ्चन अर्थात् धन-पैसा-रुपया। रुपया क्यों चाहिए? —इन कामनाओं-वासनाओं की पूर्ति के लिए। तो परिणाम क्या हुआ?— मन में इच्छा हुई भोगों की, फिर उनकी पूर्ति के लिए पैसा चाहिए। तो व्यक्ति क्या करेगा? इनके लिए प्रयत्न करेगा और लगा रहेगा इन्हीं की प्राप्ति के लिए। भोगों को भोग-भोग कर मनुष्य की क्या तृप्ति हो जाती है? ना तो। इन विषयों को भोगते-भोगते हम ही नष्ट हो जाते हैं, कामनाएँ तो ज्यों की त्यों बनी रहती हैं।

---

1 श्री म दर्शन भाग-5, 1986 पृ० 83

संस्कृत के कविवर भर्तृहरि कहते हैं— 'तृष्णा: न जीर्णा: वयमेव जीर्णा:' अर्थात् तृष्णाएँ कभी समाप्त नहीं होतीं, हम ही समाप्त हो जाते हैं। तो विषय-भोग के इस चक्र से निजात कैसे पाएँ? श्री म कहते हैं— ठाकुर ने बताया है, इस संसार में अनासक्त होकर रहो। विषयों का, संसार का, मन से त्याग करो।

> ''मन से क्या त्याग होता है? एकदम ही त्याग की बात कहने से भय पाएगा, जभी कहते हैं, मन से त्याग करोगे। यह जैसे केले के भीतर कुनीन देना है। मन से त्याग करने पर जब रह सकेगा, तब बाहर का त्याग भी हो जाएगा। किन्तु प्रथम कहने से सुनेगा नहीं, तभी बताया— मन से त्याग करो। यही है धीरे-धीरे (gradual)— त्याग का पथ।[1]

ठाकुर मनुष्य के मन का स्वभाव खूब जानते हैं। कोई भी संसारी त्याग की बात एकदम क्यों सुनेगा? भोगों में इतना नशा है कि भोगों द्वारा सताए जाने पर, कष्ट पाने पर भी व्यक्ति उन्हीं में डूबे रहना चाहता है। इसका बहुत सुन्दर उदाहरण देते हैं ठाकुर—

''ऊँट कँटीली घास खाता है।... मुख से धड़-धड़ खून बह रहा है तो भी वही खाता रहता है, छोड़ता नहीं। संसारी व्यक्ति इतना शोक-ताप पाता है, फिर भी कुछ दिनों के बाद फिर जैसे का तैसा...[2]''

हाँ, किसी को यदि संसार से वाकई कष्ट पहुँचा हो और थोड़ा भी विरक्ति का भाव उसमें आ जाए, ऐसे के लिए ठाकुर कहते हैं—
'विषयों का मन से त्याग करो।'
अर्थात् विषय-भोगों को मन से मत भोगो। उन्हें मन में न आने दो। मन से सर्वदा विचार करते रहो संसार की अनित्यता का, असारता का, संसार के दु:ख-कष्टों का। धीरे-धीरे फिर प्रवृत्ति हो जाएगी, मन में होगा छोड़ ही दें इस माया-जाल को, इन विषयों को, इस संसार को।

---

1 श्री म दर्शन भाग-5, 1986, पृ० 84

2 श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, पृ. 93 श्री म ट्रस्ट प्रकाशन, द्वितीय संस्करण।

जैसे सीधे-सीधे कुनीन खाने से कड़वी लगती है, शायद उल्टी होकर बाहर ही आ जाए। तो कुशल माँ बच्चे को केले के भीतर कुनीन छिपा कर देती है। बच्चा उसे आसानी से निगल कर उदरस्थ कर लेता है। और उदर में जाने के बाद कुनीन का लाभ तो हो ही जाएगा।

ऐसे ही पहले मन से संसार का त्याग, फिर धीरे-धीरे बाहर से भी त्याग। मन से त्याग का अर्थ है—
विषयों का भोग करते हुए मन में सदैव यह भाव रहना कि
'ये सभी सम्बन्ध, सम्बन्धियों का प्यार, मेरी अपनी यह देह, भोग के सभी पदार्थ सदा रहने वाले तो हैं नहीं' ऐसा सोचते-सोचते मन इनके साथ वैसा आसक्त नहीं होता। धीरे-धीरे यह भाव पक्का होते रहने से बाह्य त्याग भी सम्भव है।

श्री म को ठाकुर ने तैयार किया— **गृही संन्यासी**।
समस्त विषयों का मन से त्याग करवाया घर के भीतर रखकर ही। यही बात बता रहे हैं श्री म भक्तों से—

> ''दो-एकजन को घर में भी रखते हैं कभी-कभी, मन से सब त्याग करवाकर लोक-शिक्षा के लिए। किन्तु बड़ा कठिन है। यही है योग-भोग का पथ— सैकण्ड क्लास। भोग लेते ही बद्ध हो गया। वह अपनी उपार्जित हो, अथवा अन्य की दी हुई वस्तु ही हो। 'कस्यस्वित् धनम्' अर्थात् अन्य किसी के धन का लोभ नहीं करेगा। तो फिर क्या अपने धन का लोभ करेगा— अर्थात् भोग करेगा? नहीं, वह भी नहीं।
> अपना या पराया— सब ईश्वर का है, स्मरण रखना होगा। मैं सेवक हूँ, साधारण आहार और वासस्थान का हक है, इससे अधिक नहीं। जैसे बड़े व्यक्ति के घर की दासी रहती है। जभी ठाकुर ने यही बात भक्तों से कही थी। स्थान, काल, अवस्था-अनुसार जितने के न होने से न चले, उतना लेना।*

---

* श्री म दर्शन भाग-5, 1986, पृ० 84

श्री म को ठाकुर ने तैयार किया एक अलग ही श्रेणी के गृही संन्यासी के रूप में। क्यों?— इन्हें देखकर लोगों को शिक्षा होगी। यह मार्ग बड़ा कठिन है। क्योंकि भोगों की सामग्री सामने होते ही मन उन भोगों में बँध जाता है। मन का स्वभाव ही ऐसा है। वह वस्तु फिर अपनी हो अथवा अन्य की, मन उसे भोग लेना चाहता है। इसीलिए बताया कि किसी भी वस्तु का लोभ न करो— मा गृधः कस्यस्वित् धनम्। वह धन किसी का भी हो— स्व अर्जित हो अथवा किसी और के द्वारा अर्जित।

पर मन में होता है यह वस्तु, यह धन तो मुझ द्वारा अर्जित है, इसका लोभ या इस पर स्वामित्व मेरा क्यों न हो? उत्तर दे रहे हैं—
तुम्हारा कहाँ? सब तो ईश्वर का है— 'ईशावास्य इदम् सर्वम्'।

तो मैं क्या करूँ? ऋषि कह रहे हैं—

स्व अर्जित है ना! तो थोड़ा-सा लेना। जितना सामान्य आहार, वास तथा जीवन की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है, बस उतना-सा। वह कैसे?—
जैसे बड़े घर की दासी बड़े सेठ के घर रहती है। समस्त ऐश्वर्य उस सेठ का है। पर वहाँ रहती है मालिक की इच्छानुसार। मालिक उसे जितना देता है, उसी में प्रसन्न रहती है। ऐसे ही हम यह मानकर चलें कि जो कुछ भी हमारे पास है, सब ईश्वर का है। उनकी इच्छा! वे जब चाहें हमसे ले लें। उस पर हमारा स्वामित्व नहीं। अतः ''स्थान, काल, अवस्था अनुसार जितने के न होने से न चले, उतना ही लेना।''
अर्थात् बालक, वयस्क, वृद्ध, रोगी— इन सब का, इनकी अलग-अलग अवस्थाओं के हिसाब से जितना चाहिए, उतना ही लेना।

ऐसा क्यों कहा?
ताकि मन सोलहों आने भोग में न जाए। गृहस्थ में रहते हुए भी मन से विषयों का त्याग करते हुए, इस संसार की असारता को समझते हुए ऐसे रहें जैसे ठाकुर बताते हैं—

''एक हाथ से गृहस्थ (कर्म) करो और दूसरे हाथ से ईश्वर को पकड़े

रहो। कर्म समाप्त होने पर दोनों हाथों से ईश्वर को पकड़ लोगे।''*

'एक हाथ से संसार करो' माने गृहस्थ के सभी कर्त्तव्यों को निभाओ पर मन ईश्वर में रखो। मन में जानो कि ये सम्बन्धी, यह धन-सम्पत्ति, वैभव, मान-यश— सब ईश्वर का है। अत: मन रखो ईश्वर में। इसी का नाम है, एक हाथ से ईश्वर को पकड़ना।

अपने सभी कर्त्तव्य पूर्ण हो जाने पर समझो कि अब गृहस्थ का दायित्व मुझ पर नहीं है; लड़के-बच्चे सयाने हो गए हैं, लड़की का विवाह कर दिया है, लड़के कमाने लगे हैं, अब मेरा एक ही काम है—
'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च'।
नाम-स्मरण, जप, ध्यान, स्वाध्याय, साधुसंग आदि कार्य हैं 'आत्मनो मोक्षार्थं'— निज के कल्याण के लिए, आत्मा की उन्नति के लिए, मोक्ष के लिए।
'जगत् हिताय' माने अपनी सामर्थ्य, योग्यता, रुचि-अनुसार शिक्षा, साहित्य, धर्म, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में बिना किसी भी लाभ की कामना के सेवा तथा प्रत्येक जन में ईश्वर वास करता है, इस भावना से समाज के असहाय, दुर्बल जनों की सेवा।

यही है आत्म साक्षात्कार का, ईश्वर-साक्षात्कार का, ईश्वर-दर्शन का मार्ग या उपाय और ऐसी दिनचर्या होना ही है आत्म साक्षात्कार का, ईश्वर-दर्शन का लक्षण।

— (डॉ०) श्रीमती निर्मल मित्तल

---

* श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत-I पृ० 59 श्री म ट्रस्ट प्रकाशन, द्वितीय संस्करण।

''वैदिक आचार की बड़ी आवश्यकता है। वैदिक आचार को ही सदाचार कहते हैं, ऋषियों का आचार। धर्म-जीवन यापन करते समय इसकी बड़ी आवश्यकता है।

....

जानवर सदाचार नहीं जानते, मनुष्य जानते हुए भी यदि आचरण नहीं करते तो वे भी जानवरों की तरह ही हो जाते हैं। इसीलिए सदाचार बहुत ही आवश्यक हो गया है। जब तक ईश्वर-दर्शन न हो जाए तब तक ऋषियों की वाणी पालन करनी चाहिए। भले-बुरे का विचार, शुचि-अशुचि, प्रसाद-अप्रसाद, पवित्र-अपवित्र— ये सब मान कर चलना उचित है। 'ईश्वर ही सब कुछ तथा सर्वत्र हैं', यह बुद्धि तत्त्वज्ञान (ईश्वर-दर्शन) हो जाने पर ही होती है। तभी यह बात कही जा सकती है (कि ईश्वर ही सब कुछ तथा सर्वत्र हैं और वे ही सब कुछ करते हैं)। (तब) फिर आचरण की अपेक्षा नहीं रहती। तत्त्वज्ञान न होने तक यह सब मानना चाहिए।''

— नूपुर-2012, पृ० 94-95

स्वामी विवेकानन्द

- घर का नाम : नरेन्द्रनाथ दत्त।
- जन्म : 12 जनवरी, सन् 1863 ईसवी।
- स्थान : सिमला मुहल्ला, कोलकता।
- माता–पिता : श्रीमती भुवनेश्वरी देवी और विश्वनाथ दत्त।
- शिक्षा : बी.ए. दर्शनशास्त्र में विशेष रुचि।
- गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस।
- बेलूड़ मठ की स्थापना : फरवरी, 1898 ईसवी।
- महासमाधि : 4 जुलाई, 1902 ईसवी।

■

7

The Goal of Human Life

according to
Swami Vivekananda

We present a selection of quotes from the Complete Works of Swami Vivekananda on the topic of the goal of human life.

Lest us first see
What God is

In the words of Swami Vivekanand, ‘‘The concept of God is a fundamental element in the human constitution. In the Vedanta, Sat-chit-ânanda (Existence-Knowledge-Bliss) is the highest concept of God possible to the mind. It is the essence of knowledge and is by its nature the essence of bliss.’’[1]

Goal of life

Is this world the goal of life? Nothing more? Are we to be just what we are, nothing more?....

---

1 Complete Works of Swami Vivekananda, Vol 1, Lectures and Discourses, “ What is Religion”, p. 335.

....Is enjoyment the goal of life? Were it so, it would be a tremendous mistake to become a man at all.

....Can senses ever be the goal? Can enjoyment of pleasure ever be the goal? Can this life ever be the goal of the soul?.... No man is ever satisfied. That is the cause of misery, but it is also the cause of all blessing. That is the sure sign. How can you be satisfied with this world?
... If tomorrow this world becomes heaven, we will say, "Take this away. Give us something else."

The infinite human soul can never be satisfied but by the Infinite itself .... Infinite desire can only be satisfied by infinite knowledge — nothing short of that.

....

Man is struggling upward and forward until he reaches the infinite, the unlimited, his birthright, his nature. All these combinations and recombinations and manifestations that we see round us are not the aim or the goal, but merely by the way and in passing. These combinations as earths and suns, and moons and stars, right and wrong, good and bad, our laughter and our tears, our joys and sorrows, are to enable us to gain experience through which the soul manifests its perfect nature and throws off limitation.[1]

The goal of mankind is knowledge. That is the one ideal placed before us by Eastern philosophy. Pleasure is not the goal of man, but knowledge. Pleasure and happiness come to an end. It is a mistake to suppose that pleasure is the goal. The cause

---

1 CWSV, Vol 6, Lectures and Discourses, "The Nature of the Soul and its Goal", pp. 22-23

of all the miseries we have in the world is that men foolishly think pleasure to be the ideal to strive for. After a time man finds that it is not happiness, but knowledge, towards which he is going, and that both pleasure and pain are great teachers, and that he learns as much from evil as from good.[1]

… the Indian idea is that **God is the goal of life**; there is nothing beyond God, and the sense-enjoyments are simply something through which we are passing now in the hope of getting better things. Not only so; it would be disastrous and terrible if man had nothing but sense-enjoyments. In our everyday life we find that the less the sense-enjoyments, the higher the life of the man.

Look at the dog when he eats. No man ever ate with the same satisfaction. Observe the pig giving grunts of satisfaction as he eats; it is his heaven, and if the greatest archangel came and looked on, the pig would not even notice him. His whole existence is in his eating. No man was ever born who could eat that way.

Think of the power of hearing in the lower animals, the power of seeing; all their senses are highly developed. Their enjoyment of the senses is extreme; they become simply mad with delight and pleasure.

And the lower the man, the more delight he finds in the senses. As he gets higher, the goal becomes reason and love. In proportion as these faculties develop, he loses the power of enjoying the senses.[2]

---

1 CWSV, Vol 1, Karma Yoga, "Karma and its Effect on Character", pp. 27
2 CWSV, Vol 4, Addresses on Bhakti Yoga, "The First Steps", pp. 13

What can be a higher end than God? God Himself is the highest goal of man; see Him, enjoy Him. We can never conceive anything higher, because God is perfection.

We cannot conceive of any higher enjoyment than that of love, but this word love has different meanings. It does not mean the ordinary selfish love of the world; it is blasphemy to call that love. The love for our children and our wives is mere animal love; that love which is perfectly unselfish is the only love, and that is of God. It is a very difficult thing to attain to.

We are passing through all these different loves — love of children, father, mother, and so forth. We slowly exercise the faculty of love; but in the majority of cases we never learn anything from it, we become bound to one step, to one person. In some cases men come out of this bondage. Men are ever running after wives and wealth and fame in this world; sometimes they are hit very hard on the head, and they find out what this world really is.

No one in this world can really love anything but God. Man finds out that human love is all hollow. Men cannot love though they talk of it. The wife says she loves her husband and kisses him; but as soon as he dies, the first thing she thinks about is the bank account.... . The husband loves the wife; but when she becomes sick and loses her beauty, or becomes haggard, or makes a mistake, he ceases to care for her. All the love of the world is hypocrisy and hollowness.[1]

Why Man Wants God

Why does man look for God? Why does a man, in every

1 CWSV, Vol 4, Addresses on Bhakti Yoga, "The First Steps", pp. 15

nation, in every state of society, want a perfect ideal somewhere, either in man, in God or elsewhere? Because that idea is within you. It was your own heart beating and you did not know; you were mistaking it for something external. It is the God within your own self that is propelling you to check for Him, to realize Him.[2]

How to attain God

The ultimate goal of all mankind, the aim and end of all religions, is but one — re-union with God, or, what amounts to the same, with the divinity which is every man's true nature.

The method of attaining God may vary with the different temperaments of men.

Both the goal and the methods employed for reaching it are called Yoga, a word derived from the same Sanskrit root as the English "yoke", meaning "to join", to join us to our reality, God. There are various such Yogas, or methods of union — but the chief ones are — Karma-Yoga, Bhakti-Yoga, Râja-Yoga, and Jnâna-Yoga.

Every man must develop according to his own nature. As every science has its methods, so has every religion. The methods of attaining the end of religion are called Yoga by us, and the different forms of Yoga that we teach, are adapted to the different natures and temperaments of men. We classify them in the following way, under four heads:—

(1) **Karma-Yoga**— The manner in which a man realises his own divinity through works and duty.

(2) **Bhakti-Yoga**— The realisation of the divinity

2 CWSV. Vol 2, June, 1963 page 81-82.

through devotion to, and love of, a Personal God.

(3) **Raja-Yoga**— The realisation of the divinity through the control of mind.

(4) **Jñana-Yoga**— The realisation of a man's own divinity through knowledge.

These are all different roads leading to the same centre — God. Indeed, the varieties of religious belief are an advantage, since all faiths are good, so far as they encourage man to lead a religious life. The more sects there are, the more opportunities there are for making successful appeals to the divine instinct in all men.[1]

Let us ask ourselves each day, "Do we want God?"
When we begin to talk religion, and especially when we take a high position and begin to teach others, we must ask ourselves the same question. I find many times that I don't want God, I want bread more. I may go mad if I don't get a piece of bread; many ladies will go mad if they don't get a diamond pin, but they do not have the same desire for God; they do not know the only Reality that is in the universe.

....This world and this body have their own value, a secondary value, as a means to an end; but the world should not be the end. Unfortunately, too often we make the world the end and God the means. We find people going to church and saying, "God, give me such and such; God, heal my disease." They want nice healthy bodies; and because they hear that someone will do this work for them, they go and pray to Him. It is better to be an atheist than to have such an idea of religion....If

1 CWSV, Vol. 5, Notes from Lectures and Discourses, "The Goals and the Methods of Realization", pp. 291-292

we cannot get to the end, we shall at least come nearer to it. We have slowly to work through the world and the senses to reach God.[1]

God in Every Jiva

After so much austerity, I have understood that as the real truth— God is present in every jiva; there is no other God besides that. 'who serves jiva, serves God in deed.[2]

…the moment I have realized God sitting in the temple of human body, the moment I stand in reverence before every human being and see God in him— that moment I am free from bondage, everything that binds vanishes, and I am free.[3]

....If there is God, it must be within us. . . . [I must be able to say,] "I have seen Him with my eyes," Otherwise I have no religion. Beliefs, doctrines, sermons do not make religion. It is realisation, perception of God [which alone is religion][4].

What Comes After Realization

The next question is to know what comes after realization? ....Then alone a man loves when he finds that the object of his love is not a clod of earth, but it is the veritable God Himelf. Then the wife will love the husband more when she thinks that the husband is God Himself. The husband will love the wife the more when he knows that the wife is God Himself. That mother will love the children more who thinks that the children are God Himself. That man will love his enemy as

1 CWSV, Vol 4, Addresses on Bhakti Yoga, "The First Steps", pp. 20

2 CWSV. Vol. 7, April 1964, p. 247

3 CWSV. Vol. 2, June 1963, p. 320-21

4 CWSV, Vol 2, Practical Vedanta and Other Lectures, "The Goal", pp. 473

he knows that every enemy is God Himself. He will love a holy man who knows that the holy man is God Himself…. Such a man becomes a world-mover for whom his little self is dead and God stands in its place. The whole universe will become transfigured to him. That which is painful and miserable will all vanish. ….Beautiful will be this universe then![1]

— Sandeep Nangia

1 CWSV, Vol. 2, June, 1963 p. 285-88.

भारत के ऋषियों ने सुस्पष्ट भाव में देख लिया था, मनुष्य के स्थूल शरीर को छोड़कर और भी दो शरीर हैं एक के पश्चात् एक— सूक्ष्म और कारण शरीर। उसके पीछे महाकारण अन्तर्यामी हैं।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण— इन तीनों शरीरों को ही आहार चाहिए। स्थूल शरीर का आहार है— अन्न-वस्त्रादि। सूक्ष्म शरीर का आहार विद्यादि उपार्जन है— जिसके द्वारा विचारशक्ति की प्रखरता (तेजी) बढ़ती है। और कारण शरीर का आहार है— जीव का भगवान के साथ उसके नित्य सम्बन्ध के पुन: आविष्कार की चेष्टा। इसको ही साधारण बोली में कहते हैं— पूजा, पाठ, जप और ध्यान। इसी तीसरे के द्वारा शान्ति की अफुरन्त खान के संग में युक्त हुआ जाता है।

— 'श्री म दर्शन' भाग VII-भूमिका

स्वामी नित्यात्मानन्द जी

- जन्म का नाम : जगबन्धु राय।
- जन्म : गंगा दशहरा सन् 1893 (मामा श्री भैरवराय और श्री गोबिन्दराय के घर)
- स्थान : पूर्वी बंगाल (बंगला देश) के मैमनसिंह ज़िले का कोठियादि नाम का कस्बा
- शिक्षा : लॉ तक। लॉ करते–करते श्री म के पास जाने लगे। श्री म कथित ठाकुर की बातें डायरी में लिखने लगे।
- दीक्षा : स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) से दीक्षित।
- ऋषिकेश–वास : सन् 1938 से ऋषिकेश में वास और 'श्री म दर्शन' महाग्रन्थ माला का लेखन और प्रैस कॉपी की तैयारी।
- सन् 1958 में श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता से भेंट। शेष जीवन प्रायः उन्हीं के वास को निज आश्रम बनाए रखा। उनकी सहायता से श्री म दर्शन का मुद्रण–प्रकाशन आरम्भ। सन् 1967 में श्री म ट्रस्ट की स्थापना।
- महासमाधि : 12 जुलाई, सन् 1975 को चण्डीगढ़ में।

■

8

स्वामी नित्यात्मानन्द
की दृष्टि में
मनुष्य-जीवन का उद्देश्य

''न हि प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि प्रवर्त्तते''— मूढमति भी निष्प्रयोजन जीवन यापन नहीं करता। अत: मनुष्य-जीवन के उद्देश्य को लेकर जिज्ञासा सर्वथा स्वाभाविक है। ऋषियों ने मनुष्य मात्र को 'अमृतस्य पुत्रा:' अर्थात् अमृत की सन्तान बताकर उसे स्व-स्वरूप में प्रतिष्ठित होने को सदा प्रोत्साहित किया है— 'आत्मा वा अरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:'— आत्मा का सतत श्रवण, मनन एवं अनुध्यान किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए शास्त्रों ने मनुष्य की भिन्न-भिन्न प्रकृति के अनुरूप अनेक मार्ग भी दर्शाए हैं।

युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण तथा उनकी पार्षद सन्तानों ने ईश्वर-दर्शन को ही मनुष्य-जीवन का उद्देश्य बताया है। शिव-ज्ञाने जीव-सेवा को भी उन्होंने आत्म साक्षात्कार के अनन्तर ही करने को कहा है।

दो अप्रैल, 1882 को श्री श्री ठाकुर श्री प्राणकृष्ण मुखोपाध्याय के घर भक्तसंगे बैठे हैं। प्राणकृष्ण के एक पड़ोसी ने पूछा कि क्या गृहस्थ में रहते हुए भी भगवान को पाया जा सकता है। श्री श्री ठाकुर तत्काल दृढस्वरे कहने लगे— ''अवश्य पाया जाता है। तो भी सर्वदा साधुसंग और सर्वदा प्रार्थना चाहिए। उनके निकट क्रन्दन करना चाहिए। मन का समस्त मैल धुल जाने पर उनका दर्शन होता है। मन तो मानो मिट्टी-पुती लोहे की सूई है— ईश्वर

चुम्बक पत्थर है, मिट्टी बिना गए चुम्बक के संग योग नहीं होता। रोते-रोते सूई की मिट्टी धुल जाती है; सूई की मिट्टी अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, पापबुद्धि, विषयबुद्धि। मिट्टी धुलते ही सूई को चुम्बक खींच लेगा— अर्थात् ईश्वर-दर्शन होगा।''[1]

इसी परम्परा में पूज्यपाद स्वामी नित्यात्मानन्द जी (जगबन्धु महाराज) का जीवन-दर्शन भी मानव-जीवन की इस उच्च विचारधारा का मूर्त्त रूप है और ईश्वर-अनुरागी सभी भक्तसाधकों को मनुष्य-जीवन के सर्वोच्च आदर्श की सहज अनुभूति के लिए निरन्तर प्रेरणा देता है। इस तत्त्व के दर्शन हमें श्री 'म' दर्शन के प्रथम भाग के आरम्भ में हो जाते हैं :—

मिहिजाम आश्रम प्राङ्गण का सम्मार्जनी से परिष्कार करने के उपरान्त स्नानादि नित्यकर्म हो चुकने पर जगबन्धु महाराज आचार्य श्री म के पास एकान्त में उपविष्ट हैं। अध्यात्म मार्ग की साधना में आने वाले अनेक अन्तरायों के सम्बन्ध में जगबन्धु महाराज की शंकाओं का समाधान करते हुए आचार्य श्री 'म' कहते हैं :—

> ''गुरुदेव परमहंसदेव जी के मुख से सदा ही सुनते रहे— बेटा, भगवान का दर्शन ही मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है। वह न हो तो जीवन वृथा है। ईश्वर-लाभ के इस लक्ष्य को सतत समक्ष रखते हुए जो भी निष्काम कर्म किया जाएगा, वह उस लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक ही होगा।[2]''

इसी ग्रन्थ के परवर्त्ती भाग में पुनः आचार्य श्री म जगबन्धु महाराज से कहते हैं : मठ के साधुओं का यही उच्च आदर्श है। वे अन्य कुछ भी नहीं चाहते। चाहते हैं केवल ईश्वर[3]। ध्यातव्य है कि जगबन्धु महाराज को 25 मार्च, 1927 को बेलुड़ मठ में श्री श्री ठाकुर के अन्यतम पार्षद सन्तान तथा श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन के द्वितीय अध्यक्ष स्वामी शिवानन्द जी (महापुरुष महाराज)

---

1 श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, पञ्चम भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 7।

2 श्री 'म' दर्शन, प्रथम भाग, पृष्ठ 8

3 श्री 'म' दर्शन, प्रथम भाग, पृष्ठ 46-47

ने विधिवत् ब्रह्मचर्य व्रत में दीक्षित किया था। तदुपरान्त उन्होंने ही परमपूज्य स्वामी विवेकानन्द जी के 21 जनवरी, 1930 ईसवी के जन्मतिथि महोत्सव पर उन्हें संन्यासव्रत में दीक्षित किया था। तभी से ब्रह्मचारी श्रीश चैतन्य स्वामी नित्यात्मानन्द कहलाए जाने लगे।

यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि स्वामी नित्यात्मानन्द जी का निश्चय था कि जब तक एक भी श्री श्री ठाकुर की पार्षद सन्तान इस धराधाम में सशरीरी रहेगी, तब तक वे बेलुड़ मठ त्याग नहीं करेंगे। स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज), स्वामी अखण्डानन्द (श्री गङ्गाधर महाराज) और स्वामी विज्ञानानन्द (श्री हरि प्रसन्न महाराज जी) का क्रमशः 1934, 1937 तथा 1938 में देहावसान होने पर ही मठ से अलग होकर पूर्ण तपस्वी का जीवन यापन करने का उनके मन में विचार आया। उनके इस आचरण से यही परिपुष्ट होता है कि उन्होंने श्री म-उक्त उस महावाक्य को जीवन्त जीया था कि मठ के साधु केवल ईश्वरमय हैं।

मानव-जीवन के सर्वोच्च आदर्श— ईश्वर-साक्षात्कार को अनुभूत करके जीवन-यापन करने का अटल निर्णय पूज्य महाराज ने अपने उठन्त यौवन में ही ले लिया था। इसका निदर्शन भी हमें मिहिजाम खण्ड में ही मिलता है। श्री म के परामर्श से वे एक निकटस्थ पर्वत पर चढ़कर चारों ओर दृष्टिपात करके वृहत् ब्रह्माण्ड का समष्टि रूप दर्शन करते हैं। समीपस्थ गुफा में बैठकर ध्यान करते हुए उनके अन्तर्मन में स्वतः अनुभूत हो उठता है— ''ईश्वर-दर्शन न किया गया तो कुछ भी नहीं हुआ। रूप, यौवन, जीवन, विद्या, बुद्धि सब उनके पादपद्मों में समर्पण करने पर ही सब सार्थक हैं।[1]''

पूज्यपाद आचार्य श्री 'म' अपने स्वाभाविक ओजस्वी स्वर से भक्तों को प्रबोध दे रहे हैं— साधन-भजन कितना ही चाहे करो; परीक्षा तो है उनके दर्शन करके उनके संग आलाप करना। एक टुक आँख बंद करके ध्यान करके कहने से कि हमारा ईश्वर-दर्शन हो गया है, ऐसे नहीं होता।[2] इस परीक्षा का सरल उपाय प्रस्तुत करते हुए स्वामी नित्यात्मानन्द जी श्री 'म'

1 श्री 'म' दर्शन, प्रथम भाग, पृष्ठ 52

2 श्री 'म' दर्शन, द्वितीय भाग, पृष्ठ 38

दर्शन के तृतीय भाग की भूमिका में श्रीरामकृष्ण की अभयवाणी की श्री 'म'-मुख-निसृत प्रतिध्वनि का उद्‌घोष करते हैं—

> ''और वही फिर सुनो भाई, श्रीरामकृष्ण की प्रतिध्वनि श्री म के मुख से। संसार में रहोगे जल में कमल-पत्रवत्। अथवा छाछ के ऊपर मक्खनवत्। अथवा 'पांकाल मछली' की भाँति, कीचड़ में रहते हुए भी निर्मल, अथवा कछुवे की तरह, जल में रहते हुए मन पृथ्वी पर रखे अंडों में। किंवा गृह का सब काज करती हुई उपपति पर मन रखे हुए नष्टा स्त्रीवत्। अथवा हाथ में तेल मलकर कटहल काटने की तरह। तब फिर इस संसार को ही मजे की कुटिया बना सकते हो।*''

श्री म के पावन सान्निध्य में निवास करते हुए अनेक भक्त जिज्ञासुओं के पत्रों के उत्तर पूज्य श्री म के निर्देशानुसार उनकी ओर से जगबन्धु महाराज ही दिया करते। इस सम्बन्ध में उन्हें यह सिखा दिया गया था कि पाठक-भक्त को पत्र पढ़ते समय निरन्तर यह लगना चाहिए कि ईश्वर ही उनका अनन्तकाल का बन्धु है और वे उनकी सन्तान होने के कारण अमृत के अधिकारी हैं। पत्र की प्रस्तुति ऐसी जीवन्त होनी चाहिए कि पाठक-साधक को निरन्तर यह आभास हो कि ईश्वर को न जानना ही जीवन का सबसे बड़ा दु:ख है। इस तथ्य के निदर्शनार्थ यहां उनके एक पत्र का उद्धरण प्रस्तुत करना प्रासङ्गिक ही रहेगा :

एक भक्त ने पूछा, भले लोगों को भी चिन्ताएँ क्यों सताती हैं ? दूसरों के कुकर्मों के कारण सत्पुरुष क्यों दु:ख पाते हैं ? विनम्र एवं ईमानदार प्रभु-सेवकों को अपमान क्यों सहने पड़ते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर पूज्य महाराज अमृतसर से उक्त भक्त को लिखे दिनांक 20 सितम्बर, 1964 के पत्र में दे रहे हैं :

> ''These are eternal questions ...In my early twenties I was very much troubled with this question. So I asked my Guru, revered M., an apostle of Shri Ramakrishna, once. "Why do good people suffer?"

* श्री 'म' दर्शन, तृतीय भाग, पृष्ठ xv

"To raise their minds to majestic heights," promptly came the answer from the mouth of this great saint, his holy face lit up by divine and illuminating sobriety. Look at the sufferings of Rajarshi Harishchandra and the Pandavas, Ram and Krishna; Christ and Buddha; Shri Ramakrishna and Vivekananda. They are the ideals of mankind and yet they suffered. Their names confer on people eternal bliss to this day even. And yet they had to suffer indignities and physical violence. All persons even the avataras have to suffer when they take up human body fearlessly without any expectation of worldly rewards. Your recent worries will surely lead you to nobler results; to depend on God alone, to strengthen your mind always, do the right thing fearlessly without any expectation of worldly rewards.

These recent happenings will also once again awaken in you the consciousness how irresistible, inevitable and inescapable is the influence of the company. Once more you will be remembering why Shri Ramakrishna, God-incarnate, so strongly emphasized for sadhu-sanga, daily for all bhaktas in the midst of worldly duties.

The watch of the sadhus keeps correct time. And the watch of the householders is liable to wrong timings. So, the need for daily adjustment— this wisdom I've heard number of times from revered M., a householder disciple of Shri Ramakrishna. He would force bhaktas to visit daily Belur math, the abode of sadhus.

We were told by elders, that is the direct disciples of Shri Ramakrishna, who were all god realized souls, "If one calls on God, one will not be visited by

mishaps— this popular belief is not true. Rather bhaktas are put to trouble more than ordinary people. It is for two reasons:

(i) To test their sincerity and

(ii) To snatch away their mind from worldly pursuits and relationship and to fix it on God.

Whether a bhakta is put to trouble or not is immaterial to him. For a real bhakta knows that God is his eternal Father or Mother. As such he does everything for his good. He can never be unkind to him. At times mother gives a slap not out of malice or hatred, but out of infinite love for his child. For God is all love, all good, always good and good to all. If He puts us at times in worries it is only for searching our hearts, to find out, if there is any defect in us.

I can assure you, your these worries and troubles will land you to the cape of good hope, will enable you to make a searching enquiry within you; will make you pure gold.

Swami Vivekananda used to say, "Those who are not visited by troubles and tribulations of the world are babies, simply babies." God has intentionally made these misfortunes of the worldly life to purify the minds of bhaktas. When any misfortune overtakes a man, a bhakta is sure to take refuge in God. May be in the beginning he may be angry with God. But in the end he will have to fall back upon God, because there is no other shelter of peace and happiness in the world except God.

This is the philosophy of the 'Evils of the world'. These evils draw bhaktas towards God. So the poison

acts now as the nectar, losing its harmful effects. Thus evil brings good, indignity brings eternal honour, and death brings immortality.

Thus the whole world is transformed into an abode of bliss, evil become good, and worries are turned into meditation of God, individual self is merged into the universal Self, jivatma attains to Paramatma, this is the summum bonum of human beings.

Rest assured, you are willingly or unwillingly leading towards that great end— Sachhidananda. Shri Ramakrishna said; "Verily, verily I do swear unto thee: whosoever will think of me shall inherit my wealth. And my wealth consists of jnana, bhakti, vivek-vairagya, peace, happiness, pure love and Samadhi.

....

Ever yours in the Lord,
Swamiji"

यही देखिए, परम आचार्य श्री 'म' द्वारा सिखाई गई शैली का अवलम्बन करके कैसे पूज्य महाराज ने जिज्ञासु व्याकुल भक्त को स्थूल शरीर के जगत् से उठाकर क्रमशः सूक्ष्म शरीर के संसार में पहुंचा दिया और मनुष्य जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य में अवस्थित रहने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। शेष यात्रा की आनन्दमय परिणति तो भक्त की व्याकुल चेष्टा पर निर्भर करेगी ही।

जगबन्धु महाराज को आचार्य श्री म ने कैसे मनुष्य-जीवन के लक्ष्य— ईश्वर-दर्शन में प्रतिष्ठित कर दिया था, इसके साक्ष्य स्वरूप एक घटना का यहां उल्लेख करना अप्रसांगिक नहीं होगा। घटना इस प्रकार है—

4 नवम्बर, 1924 की रात्रि में श्री 'म' ने उनसे कहा, "आप kindly

(कृपा करके), जरा पता करें कि सिंहवाहिनी अब किसकी बाड़ी में हैं। ठाकुर ने इसी सिंहवाहिनी का दर्शन और भूमिष्ठ प्रणाम किया था। चरणामृत ग्रहण करके करजोड़ कर स्तुति करके कहा था, 'माँ, अपने भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न करो। तुम सदा हृदय में जाग्रत रहो।' तत्पश्चात् माँ को भावते-भावते समाधिस्थ हो गए।''

अगले दिन, 5 नवम्बर को श्री म के कहे अनुसार सिंहवाहिनी के दर्शन करके जब जगबन्धु लौटे तो श्री म ने एकदम पूछा, ठाकुर का आचरण तो अनुकरण किया था? जगबन्धु बोले— हाँ, तोते की तरह। श्री म तुरन्त बोले, ''इसी का नाम भक्ति है। यही आचरण ही अन्य बाहरी आचरणों से मन को खींचकर अवतार के इसी आचरण में एकदिन प्रतिष्ठित करेगा।... मनुष्य तब हृदयस्थित लंगर रूपी इस दैवी सम्पद् को बुद्धि रूपी रस्सी से बाँधे रखकर जन्मान्तर की बहिर्मुखी आसुरी सम्पद् के साथ संग्राम करता रहता है।''

''यदि इसी जीवन में ही इस संग्राम में साधक विजयी हो जाता है, तब तो फिर उसको आत्मतत्त्व लाभ हो गया। मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य— ईश्वर-दर्शन हो गया। जीवन सार्थक हो गया।*''

इस प्रकार समझा जा सकता है कि किस प्रकार अवतारी आचरण का अनुकरण करवा के परमसुहृद् आचार्य श्री 'म' ने जगबन्धु महाराज को ईश्वर-दर्शन की दैवी स्थिति में स्थापित कर दिया था।

प्रस्तुति : डॉ० नौबत राम भारद्वाज

---

* श्री 'म' दर्शन, दशम भाग, भूमिका, पृष्ठ 4-5

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा रचित यह गीत 16 मई, 1964 का है। उन दिनों वे बाह्य रूप से रहतीं उन्मादवत् पर भीतर से आनन्द ही आनन्द। वे यूँ रहतीं जैसे प्रतिपल हों वे माँ के संग, जैसे वे हों माँ के चरणों का नूपुर, दिन-रात 'माँ' के अंग-संग।

1. नूपुर तेरे चरणों का, मैं यदि बन पाऊँ माँ।
तेरे चरण की हर गति के संग-संग बज पाऊँ माँ॥

2. तेरे कदम की हर झंकार में, मन मेरा बज जाए माँ।
इसी तरह दिन-रात के संग से, भेद तुम्हारा पाऊँ माँ॥

3. तुम हो कौन, मैं हूँ कौन, खोज यदि पा जाऊँ माँ।
नूपुर-गति से दूर रहूँ तब, मौन गीत सुन पाऊँ माँ॥

— नूपुर-2012, पृ० 63

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता (1915 – 2002)

- सन् 1958 की प्रथम भेंट में ही
  स्वामी नित्यात्मानन्द की अन्तरंग शिष्या एवं उनके पश्चात् श्री म ट्रस्ट की आजीवन अध्यक्षा।
- स्वामीजी द्वारा रचित बंगला 'श्री म दर्शन' ग्रन्थामाला का
  - प्रकाशन
  - हिन्दी–अनुवाद तथा प्रकाशन
- बंगला कथामृत का हिन्दी–अनुवाद तथा प्रकाशन।
- इनके पति प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा
  - हिन्दी 'श्री म दर्शन' का 'M., the Apostle and the Evengelist' नाम से तथा
  - हिन्दी कथामृत का 'Kathamrita' नाम से ही
  - अंग्रेज़ी–अनुवाद और प्रकाशन

■

9

मानव-जीवन का उद्देश्य और श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता

श्री श्रीठाकुर के 152वें जन्मोत्सव 21 फरवरी, 1988 को हिन्दी में श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत का पंचम भाग भी श्री म दर्शन तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम भाग के छपने के बाद जब रोहतक से ही प्रकाशित हुआ तो प्रकाशक के निवेदन में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता लिखती हैं :

> ''हिन्दी भाषा-भाषी भक्तों के हाथों में श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत का पंचम भाग रूपी यह प्रसाद देते हुए अतीव प्रसन्नता है और सन्तोष भी कि और अधिक संख्या में आन्तरिक-जिज्ञासु-भक्त युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण की अमृतमय अभयकारी वाणी के परिशीलन से मनुष्य जीवन के ध्येय—ईश्वर-दर्शन को प्राप्त कर, जीवन्मुक्त होकर जीवन यापन करेंगे। अवतारी पुरुषों की वाणी का श्रवण-मनन-निदिध्यासन करने के अतिरिक्त अन्य सरल उपाय भी तो नहीं है ब्रह्मज्ञान-लाभ का या ईश्वर-दर्शन का। अत: पूर्ण विश्वास है कि सद्य अवतार भगवान श्रीरामकृष्ण की 'कथामृत' के रूप में रिकार्ड की गई यह वाणी आचरण में लाए जाने पर सभी भाई-बहनों को स्व-स्वरूप का ज्ञान-लाभ कराएगी।''

स्पष्ट है कि माँ ईश्वरदेवी मनुष्य-जीवन के उद्देश्य— ईश्वर-दर्शन को श्री श्री ठाकुर के महावाक्यों के सतत अनुध्यान से प्राप्य मानती हैं। उन्होंने यह भी इंगित किया है कि भक्त की जिज्ञासा आन्तरिक होनी चाहिए और तद्जन्य

व्याकुलता तीव्र होनी चाहिए। तभी ठाकुरवाणी आनन्दधाम का सन्धान देने में, निर्भय जीवन-यापन करने में सहायक बनेगी। अन्यथा 'सद्य अवतार' की दिव्य वाणी भी एक कान से प्रवेश पाकर दूसरे से पार हो जाएगी और आचरण में न आने पर हृदय-मन्दिर को अजस्र आनन्द एवं शान्ति का निर्झर नहीं बना पाएगी।

ठाकुर कहते, भक्त की चिट्ठी पुराण। किसी संसारी अथवा विषयी मनुष्य की चिट्ठी का वे स्पर्श भी नहीं कर सकते थे। ऐसा था उनका 'शुद्धमपापविद्धम्' चिन्मय भौतिक शरीर! किसी अभक्त का पत्र अनजाने में स्पर्श करने जाने पर हाथ एक सीमा तक आगे बढ़ने के बाद आड़ष्ट हो जाता और वे शरीर में एक असह्य वेदना अनुभव करते।

श्री 'म' ट्रस्ट के विधिवत् पंजीकृत होने के दो मास पूर्व की बात है। रोहतक सिविल लाइन्स स्थित प्राचार्य निवास में नियमित सन्ध्यारती के समय पापा जी (प्रिंसिपल श्री धर्मपाल गुप्ता) ने पूज्य महाराज के निम्न पत्र का पाठ किया जिसका गौड़ ब्राह्मण हाई स्कूल, रोहतक के तत्कालीन हैडमास्टर श्री जय भगवान कौशिक तथा सेवा निवृत्त मेजर जनरल जंग शमशेर सिंह जी ने भी श्रवण किया :

Sri Sri Ramakrishnasharm
8.00 A.M.

Swami Nityatmananda
C/o Sh. D.N. Wadhwa
4, Circular Road,
Amritsar
17-09-67

My dear Mannoji,

Thakur is always with you and will be with you. No fear.

A tiny fry swims against the turbulent current of fearful monsoonic Ganga, but an elephant is swept away if it tries to go against the current.

So also is the case with all bhaktas of Thakur and specially with you. You will not be swept away down stream, you will not be deserted by Thakur. Know it for certain. Thakur and Ma have made you a lovely instrument for their works on earth for spreading their message of love, peace and solace to the world-

worn people of this uncertain age. You are already made a beloved child of them. You may not know it fully but they know it fully that you are their dutiful child. You are indeed blessed for you are made an useful player of this grand drama of Avataar Leela.

Listen to one Bible story. Christ said to a devotee who had a large possession when he decided to follow the Master : One thing thou lackest : go home, sell your all, give the money to the poor; then take the cross (death), then come and follow me. He could not do so and went away dejected.

Seeing his miserable condition Simon Peter and others also sat by Christ in utter dejection of mind. Seeing them in that plight did Christ ask why they sat so gloomy and morose. They answered : This devotee's mental conviction is true to us too. We also have this sense of possession etc.

Then did Christ say : Thou art his own people. Thou needeth not worry. The Father is always with you. Thou art made instruments for His words. Thou art blessed.

So you are also Mannoji, made an instrument of Thakur Ma. Give up all worries and calculations.

Thakur is with you and that you are made this blessed instrument is amply proved by the love and affection of Thakur's Bhaktas and Sadhus for you. So don't be dejected seeing the traces of worldly life in your mind.— My mind is not yet, 'fully after श्रेय', I see in it love for प्रेय.

Listen again to what Thakur said to Rev. M.— 'Mother leaves a little alloy in the mind of the Bhagawati Pandit : otherwise who will teach them, the message of peace and happiness eternal'.

Again Thakur prayed to Mother— Mother, do not make him renounce all. In the end, if you like, you may do so. But mother, if you have kept him (M.) in the household ashram, then do thou show Thyself now and then.

Said M. to me in the temple of Jagannath at Puri in a full moon night in Dec., 1925 : Thakur asked me to do a little of Mother's work. I have been doing it for the last 50 years, yet she does not sanction leave.

Then M. said : Thakur might shed tears seeing you all— how you labour for Him. He is so loving and affectionate.

If you say why does He not show Himself to us? The answer is if He makes you fully unalloyed in mind, you will not then work for His Mission. But in the end Father and Mother will take their child on their lap, this is their concern.

Did not Swamiji say with tears in eyes to M. : These ten years I was made to dance like a monkey by Him with a rope tied down in my nose.

…...

Mannoji, your whole family will co-operate with you in your service to Thakur— Your house is turned into an Ashrama and your children and husband are all members of Thakur's Ashrama.

From Thakur's side you have a duty to them. Feed them with Thakur's words and life and you are doing this. You do not fully appreciate what a noble but tremendous work Thakur has placed on your shoulders. Your family, the holy transformed family, will put their shoulders too to carry the Divine burden of God. Manno is the blessed child of Thakur and Ma. Be calm, patient and confident.

I got your letter of 14-09-1967 at 6.30 P.M. .....

afftionaly,
Swamiji

पत्र-पाठ से स्पष्ट है कि पूज्य महाराज की कृपा के फलस्वरूप माँ ईश्वरदेवी गुप्ता मानव-जीवन के सर्वोच्च आदर्श— ईश्वर-दर्शन में किस प्रकार प्रतिष्ठित हुई थीं। श्री 'म' ट्रस्ट का मोटो 'आगे ईश्वर परे सब' उनके जीवन के आचरणों में अभिव्यक्त होता। अपने विशाल कुटुम्ब-परिवार जनों के साथ उनका व्यवहार देखने से भी पता चलता है कि उनके अन्तरतम में ईश्वरी भाव निरन्तर प्रवाहित होता रहता था। बाह्य रूप से उनकी दैनान्दिन जीवन-चर्या यदा-कदा संसारी-सी प्रतीत होते हुए भी ऐसा आभास होता कि इनके भीतर दैवी भाव की एक अजस्र लहर चल रही है, फल्गु नदी के अदृश्य प्रवाहवत्।

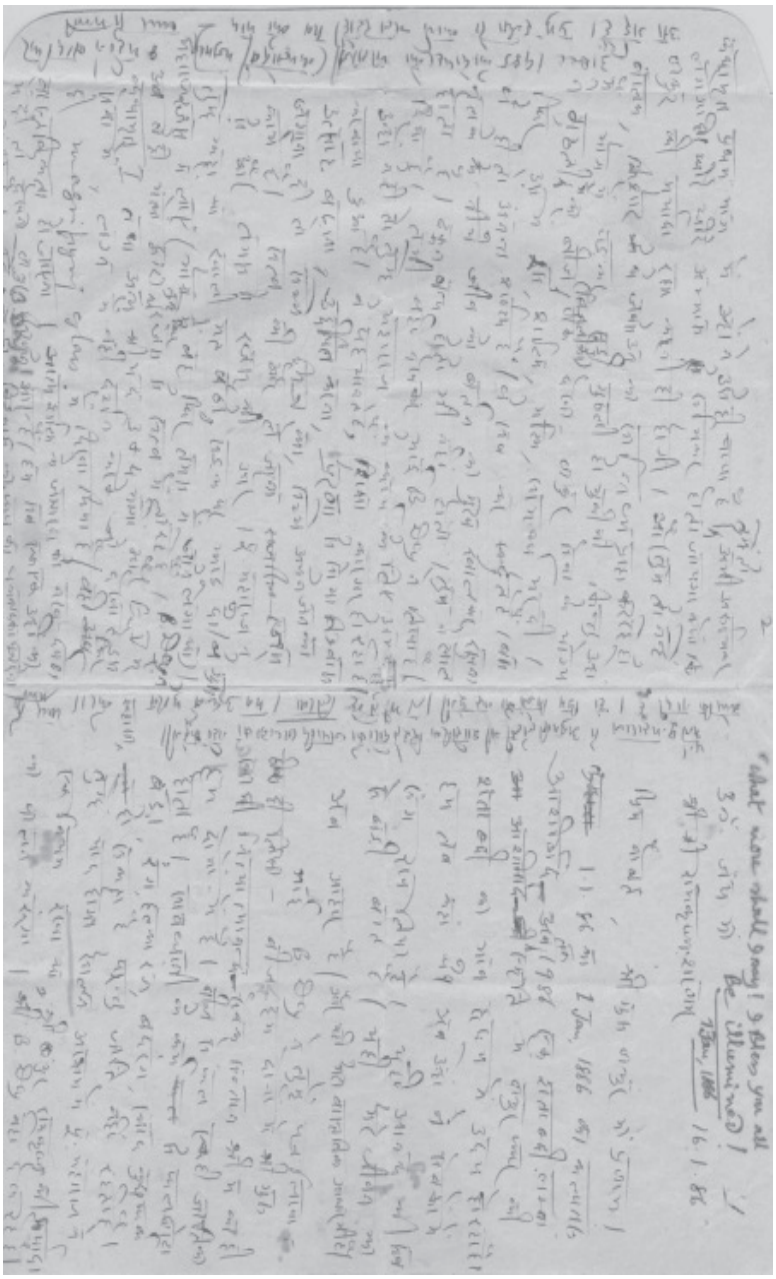

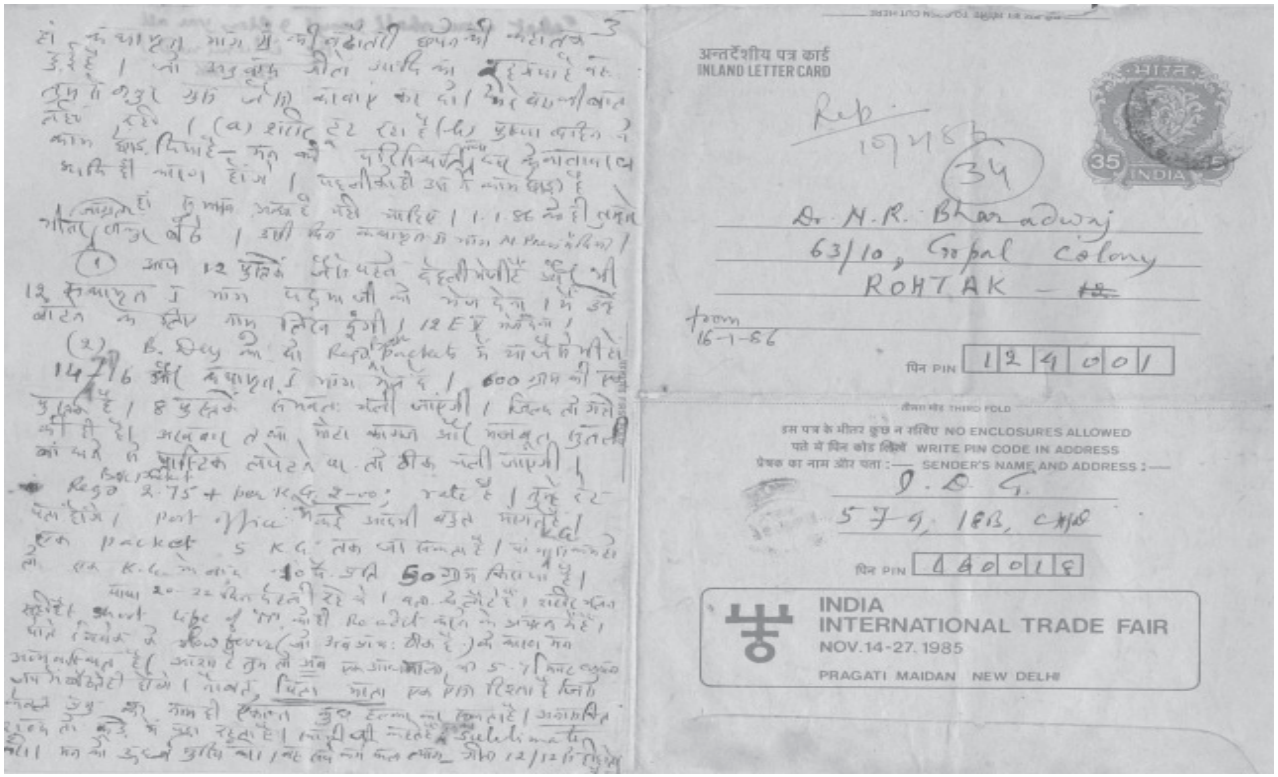

अन्तर्देशीय पत्र कार्ड
INLAND LETTER CARD
Dr. M.R. Bharadwaj
63/10, Gopal Colony
ROHTAK
पिन PIN 124001
NO ENCLOSURES ALLOWED
WRITE PIN CODE IN ADDRESS
SENDER'S NAME AND ADDRESS:
INDIA
INTERNATIONAL TRADE FAIR
NOV. 14-27, 1985
PRAGATI MAIDAN NEW DELHI

आगन्तुक के परम कल्याण-साधन-जन्य उनका यही प्रयास रहता कि वह कैसे परमार्थ के मार्ग पर अग्रसर हो। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए उन्हें 'वज्रादपि कठोर' रूप यदि धारण करना होता, तो वे आपातत: कटु वाणी का प्रयोग भी कर डालती थीं। इस दृष्टि से उन्होंने अपने सहधर्मी पूज्य पापा को भी ईश्वरोन्मुखी मार्ग पर दृढ़तापूर्वक परिचालित किया। उत्तम वैद्य के अनुरूप वे भक्तों की निरन्तर डोर पकड़े रखती थीं और भक्त साधक को ऊर्ध्वमुखी रखने का हर सम्भव प्रयास करती थीं।

इस सम्बन्ध में कल्पतरु दिवस की शताब्दी पर उनका एक भक्त को लिखा एक यह पत्र अपूर्व निदर्शन है :—

"...1-1-1886 का कल्पतरु आशीर्वाद— अब 1986 तक— एक शताब्दी लम्बा आशीर्वाद स्मृति में, ठाकुर प्यार की शताब्दी का भाव हृदय में उदय हो रहा है। हम तब कहाँ थे? अब उन्होंने सेवकों में संग रख लिया है। यही आनन्द की सबसे बड़ी बात है। यही मेरे जीवन का अब आहार है। और यही मेरा वास्तविक आधार भी है।

"भाई B. Dey ने तुम्हें पत्र लिखा— ठीक ही लिखा— बीज हम दोनों में श्री गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द— सेवक सन्तान श्री म का ही है। बीज से फल एक ही जाति का होता है। सावधानी के कर्म से फल छोटा, बड़ा; रंग— हल्का रंग, बद रंग; स्वाद— कुछ फर्क, खट्टा-सा हो सकता है, परन्तु जाति वही रहती है। तुम्हें याद होगा, सोलन आश्रम में पूज्य महाराज ने एक नियम रखा था— श्री ठाकुर रामकृष्ण-मर्यादा का पालन करूँगा। श्री B. Dey वही देख रहे हैं। कथामृत प्रथम भाग में उन्होंने उसे ही पाया है।

"तुम्हें तो अभी अरुचिकर लगेगा ही। धीरे-धीरे अभ्यास से रुचिकर होता जाएगा क्योंकि ठाकुर की मर्यादा रक्षा करनी ही होगी। और तुम तो नन्हें बालक, किशोर से थे जब से उनका सान्निध्य प्राप्त कर रहे हो। मैं भोग में पड़कर सड़ी गुठली हो चुकी थी। किन्तु उन्होंने गुठली में बीज (बिजली को) ठीक देखा— ठाकुर-सेवा के योग्य। फिर उसमें रस, शक्ति, भक्ति, सामर्थ्य भर दी।

''वे ही तो अनन्त शक्ति हैं। वे सब कर देते हैं। बस नलके के नीचे जीव को बर्तन का मुख खोलकर रखना होता है। ढक्कन बन्द हो तो भी नहीं होता।

''तुमने ढक्कन खोल दिया है। तभी वही देखकर भाई B. Dey ने लिखा है। उन्होंने ही तो तुम्हें महाराज के कार्य के लिए अभ्यास करवाया हुआ है। वे पहचानते हैं, शिक्षा कारगर हो रही है। उत्साह बढ़ाना, उद्दीपित करना, प्रेरणा से सोया विश्वास जगाना ही तो सच्चे मित्र का, सच्चे अपने जन का कार्य है। सत्व की ओर ले जाना रजस् से, और तमस् से रजस् की ओर। पू० महाराज ने तुम्हें कहा था— खाली मत बैठो, सड़क पर झाड़ू दो। वे गुरु महाराज रजस् में लाए। भोग में वह फिर तमस् में जाने लगा था। अब वे ही भक्तों द्वारा तुम्हें फिर रजस् से सत्त्व में ला रहे हैं।

''B.Dey ने कथामृत-I तथा अन्य श्री म दर्शन 3 और 4 भागों और E V में, सेवा में, लगन में वही दर्शन करके जो देखा है उसे ही magnifying glass में दिखा दिया है। वही फिर वास्तविकता हो जाएगा। आत्मशक्ति के जागरण को नख-दर्पण में ही तो देखना ठाकुर सिखाने आए हैं। हम सब एक-एक उन्हीं का अंश हैं।

''उन्हें (B. Dey को) श्रद्धा, विश्वास का, प्यार का धन्यवाद का पत्र देना।

''मैंने पू० महाराज से अनुमति ले ली थी कि शारीरिक रिश्तेदारों को जपादि साधना का नहीं कहूँगी। क्योंकि नारी हूँ। हाँ, प्रिय मित्रों को कह दूँगी। तभी तुम्हें लिखा। मन ऊर्ध्वमुखी करो।

''31 दिसम्बर, 1985 को दोपहर को माताजी (कमला देवी मजुमदार) आठ महीने बाद फिर आ गई हैं। प्रभु-इच्छा से कार्य चल रहा है।

प्यार से— मम्मी।''

इस पत्र के अनेक **अनुध्यान** से माँ ईश्वरदेवी गुप्ता की इह लोक यात्रा के

अनेक पक्ष उजागर होते हैं तथा मनुष्य जीवन के उद्देश्य के व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट करते हैं; यथा :—

पत्र के प्रथम अनुच्छेद में—

> ''आशीर्वाद स्मृति में ठाकुर प्यार की शताब्दी का भाव हृदय में उदय हो रहा है। हम तब कहाँ थे? अब उन्होंने सेवकों में संग रख लिया है। यही आनन्द की सबसे बड़ी बात है। यही मेरे जीवन का अब आहार है। और यही मेरा वास्तविक आधार भी है।''
>
> स्पष्ट है कि 1886 के कल्पतरु दिवस पर श्री श्री ठाकुर ने भक्तों में उन्मुक्त भाव से जो चैतन्यवर्षण किया था, उस कृपा-लूट में वे भी पूज्य महाराज-श्री म-सूत्र द्वारा सम्बद्ध होकर परमानन्द भागिनी थीं और इस दृष्टि से श्रीरामकृष्ण परिवार लीला के विस्तार-प्रचार में पूर्व चयनित सहचरी थीं। परवर्त्ती जीवन में भक्ति-भक्त लेकर उनका जीवन-यापन प्रभु की विराट योजना का एक भाग रहा था।

पत्र का द्वितीय अनुच्छेद विस्तृत है तथा मनुष्य-जीवन के उद्देश्य एवं साधक के धर्मजीवन के अनेक पक्षों को रखता है—

> पत्र पाठ से स्पष्ट है कि माँ ईश्वरदेवी मानती हैं कि साक्षात् ईश्वर ही गुरु रूप में अवतीर्ण होकर, योग्य पात्र-अधिकारी देखकर, उसमें दीक्षा-मन्त्र रूप बीज का आरोपण करते हैं। उस बीज का प्रस्फुटन, पल्लवन, पुष्पन तथा फलन साधक की व्याकुल चेष्टा पर निर्भर करता है। गुरु प्रदत्त एवं आरोपित उत्तम कोटि के बीज के विषय में माँ ईश्वरदेवी का अटूट अगाध विश्वास था। इसी निष्ठा के बलबूते पर ही वे जर्जर एवं रुग्णकाय होते हुए भी श्री 'म' दर्शन के प्रकाशन का विशाल ज्ञान यज्ञ सम्पन्न कर पाईं।

पत्र के द्वितीय अनुच्छेद का मध्य भाग— 'वे तो अनन्तशक्ति हैं। वे सब कर देते हैं।'— कथामृत के 5 जनवरी, 1886 के उस विवरण को स्मरण करवाता है जहाँ श्री श्री ठाकुर श्री म से कह रहे हैं। ''मन से त्याग होने पर ही हुआ; वह होने पर ही संन्यासी है।'' श्री म प्रसङ्गतः कहते हैं, ''बोध होता है गीता में जो त्रिगुणातीत की बात कही गई है, वही अवस्था हो गई है। सत्त्व, रज, तम गुण अपना-अपना कार्य कर रहे हैं, आप स्वयं निर्लिप्त हैं— सत्त्व गुण से भी निर्लिप्त।''*

इस अवस्था के प्रारम्भिक सोपान का चित्रण उक्त पत्र में हुआ है। प्रथम तो तमस् से रजस् में जाना होगा, तत्पश्चात् रजस् से सत्त्व में। तदुपरान्त ही गुणातीत अवस्था आएगी। माँ ईश्वरदेवी की यह अनुभूति ही इस बात की परिचायक है कि वे स्वयं गुणत्रय की कार्यशैली को भली प्रकार भाँप लेती थीं और तद्नुसार भक्त-साधक-जिज्ञासुओं को प्रेरित करती थीं और उन्हें मनुष्य-जीवन के उद्देश्य के मार्ग पर परिचालित करती थीं।

प्रस्तुत पत्र उनके व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष और रखता है। शरीर से सम्बन्धी आत्मीयों में अधिक ईश्वर-दर्शन करने से हानि-पतन की सम्भावना रहती है। मोह-माया न जाने कब-कैसा आवरण डालकर विक्षेप उत्पन्न कर देती है और साधक को पथ-भ्रष्ट कर देती है, पता ही नहीं चलता।

पतन का मार्ग तो इतना अधोगामी है कि साधारण जीव तो क्या, अवतारी पुरुष भी नहीं जान पाते कि कितना नीचे उतर गए। श्री श्री ठाकुर जब किला देखने गए, तो

---

* श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, भाग-III, पृष्ठ 349

अनेक नीचे उतर जाने पर उन्होंने पाया कि वे एक मंजिल नीचे चले गए हैं। तब वे संगी भक्तों को सतर्क करते हुए बोले— ओ माँ, पतन का पथ है कलम बाड़ा।

और फिर मन तो है ही जन्मजात हरामी। कुमार्ग का मार्ग प्रशस्त करने के लिए इस प्रकार के अकाट्य एवं अपरिहार्य तर्क उपस्थित कर देगा कि साधक अनायास ही सन्मार्ग से भटक जाएगा। अत: भक्त साधक को पीठ में भी दो आंखें रखकर सैनिकवत् सतर्क होकर चलने के लिए कहा गया। तभी जो नमक का हिसाब रख सकता है, वह मिश्री का भी हिसाब रख पाएगा। इस दृष्टि से शारीरिक रिश्तेदारों को धर्म, जीवन-यापन करने का उपदेश अधिकांशत: अनुपादेय एवं कष्टकारी होता है। इस प्रकार की स्थिति से मुक्ति का सन्धान पूज्य माँ ईश्वरदेवी जी ने श्रीगुरु महाराज की उक्त अनुमति— 'शारीरिक रिश्तेदारों को जपादि साधना का नहीं कहूँगी।'— में प्राप्त कर लिया था।

इस पत्र में पूज्य माँ ईश्वरदेवी जी की सन्मित्र सम्बन्धी धारणा भी स्पष्टतया अभिव्यक्त होती है। सन्मित्र वही है जो अपने मित्र को मनुष्य-जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की ओर निरन्तर अग्रसर होने की प्रेरणा बने। उसके लिए यदि कुछ कठोर कहने-करने की भी आवश्यकता पड़े तो वह भी कह दिया जाए, कर दिया जाए। तभी तो सन्मित्र होने के दायित्व का सही निर्वहन होगा। ''उत्साह बढ़ाना, उद्दीपन करना, प्रेरणा से सोया विश्वास जगाना ही तो सच्चे मित्र का, सच्चे जन का कार्य है।''

पत्र में वे ठाकुर-मर्यादा की रक्षा के विषय में चिन्तित प्रतीत होती हैं। इसीलिए वे दृढ़तया कहती हैं कि ठाकुर की मर्यादा-रक्षा करनी ही होगी। इस मर्यादा का क्या स्वरूप है,

इस विषय में उनकी क्या धारणा रही है, उसका संकेत उन्होंने सोलन आश्रम का उल्लेख करके इंगित किया है। ध्यातव्य है कि पूज्य महाराज की देखरेख में वर्ष 1970, 71, 72 और 73 में हिमाचल प्रदेश स्थित सोलन में किराए के स्थान पर चार कैम्प-आश्रम लगे थे जहाँ ईश्वर-साक्षात्कार के व्यावहारिक पक्ष का अनुष्ठान होता था। साधक जिज्ञासु को वहाँ एक कठोर आध्यात्मिक अनुशासन में निवास करना होता था।* पूज्य माँ ईश्वरदेवी ने इन चारों कैम्प-आश्रमों का आयोजन ही नहीं किया, अनेक समय वहाँ स्वयं रहकर पू० महाराज द्वारा निर्दिष्ट एवं भक्तों द्वारा यथाशक्ति अनुपालित मनुष्य-जीवन के सर्वोच्च आदर्श को मूर्त्त भी किया।

— डॉ० नौबतराम भारद्वाज

---

* नूपुर, 1998, पृष्ठ 63, तथा नूपुर, 1999 पृष्ठ 65

श्री 'म' ट्रस्ट के प्रकाशन

1. श्री म दर्शन

बंगला संस्करण— भाग 1 से 16— स्वामी नित्यात्मानन्द

श्री म दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाइबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. श्री म दर्शन

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 16

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. श्री म दर्शन

अंग्रेज़ी संस्करण— ('M'— The Apostle and the Evangelist)

श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M'— The Apostle and the Evangelist नाम से किया है। ट्रस्ट के पास प्रथम बारह भाग तो उपलब्ध भी हैं। शेष चार भाग अभी मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

4. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में सम्पादित वृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. A Short Life of Sri 'M'

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री म ट्रस्ट के फाऊँडर सैक्रेट्री प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी गई श्री म की संक्षिप्त जीवनी।

6. Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित श्री म के जीवन तथा 'कथामृत' पर शोध प्रबन्ध

7. श्री श्री रामकृष्ण कथामृत

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 5

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700 006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था।

इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली— सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

English Edition

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेज़ी-अनुवाद। चार भाग प्रकाश में आ चुके हैं। पाँचवाँ भाग प्रकाशनाधीन है।

9. नूपुर

वार्षिक स्मारिका

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें

अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती हैं। साथ ही कथामृतकार श्री म के द्वारा 'श्री म दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं। ❖